मधुमालती में प्रेम-व्यंजना

डॉ. सुशील कुमार शर्मा

उपहार प्रकाशन

दिल्ली- 110032

*** डॉ. सुशील कुमार शर्मा**

ISBN 978-81-908623-3-2

मूल्य : ₹ 250

प्रथम संस्करण : 2011

प्रकाशक: उपहार प्रकाशन

ब्लाक-29, म. नं. 61A, गली नं.11 विश्वास नगर,

दिल्ली-110032

शब्द-संयोजक : प्रतिभा प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

MADHUMALATI MEIN PREM-VYANJANA

By Dr. Sushil Kumar Sharma price : Rs. 250.00

भूमिका

'प्रेम' विश्व का सार्वभौम और शाश्वत तत्त्व है। प्रेम के अभाव में सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सृष्टि की गति, प्रगति और विकास का आधार ही प्रेम है। रचनाकारों ने प्रेम के स्वरूप को विभिन्न परिभाषाओं की रज्जुओं से आबद्ध करना चाहा, परंतु प्रेम आबद्ध न हो सका। कवियों ने अनेकशः मिथकों के रूप में इसे प्रस्तुत करना चाहा, परंतु विफल रहे। प्रेमियों ने प्रेम की गहराई का मापन करना चाहा। परंतु सात समुद्रों से अधिक की गहराई वाले प्रेम की थाह पा न सके। वस्तुतः प्रेम ईश्वरीय भावना है। जिस प्रकार ईश्वर अगम है, अगोचर है, केवल अनुभवजन्य है, उसी प्रकार प्रेम भी ईश्वर रूप है, जो अव्यक्त है, अगम है। मात्र अनुभवजन्य है।

सूफ़ीमत का भव्य भवन आत्म-शुद्धि और सौंदर्योद्भूत प्रेम की नींव पर निर्मित किया गया है। निःसंदेह इसके प्रधान शिल्पी जायसी हैं। परंतु मंझन का महत्त्व जायसी से कम नहीं है। जायसी यदि सूफी काव्याकाश के रवि हैं तो मंझन शशि हैं। जायसी की भाँति मंझन ने भी भारतीय प्रेमाख्यानों को अपने काव्य का उपजीव्य बनाया तथा उनको सरणि बनाकर सूफ़ीमत की छत तक पहुँचने का सफलता पूर्वक प्रयास किया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के द्वारा किए गए हिंदी साहित्य के काल विभाजन के अनुसार मंझन का समय भक्तिकाल के अन्तर्गत आता है। जायसी के 'पद्मावत' को आचार्य शुक्ल ने 'सक्षम समीक्षक' की दृष्टि से इतना मण्डित कर दिया कि उस दृष्टि-वट के नीचे 'मधुमालती' जैसे पौधे पनप न सके। 'मधुमालती' को जितने पोषक तत्त्व शुक्लोत्तर समीक्षकों से प्राप्त हुए, उतने स्वयं उनसे ही प्राप्त न हो सके। इसका कारण था। शुक्ल जी ने जो लिखा और अपना अभिमत व्यक्त किया, वह तत्समय उपलब्ध सामग्री पर आधृत था। उनके पश्चात् अनेक विलुप्त सामग्री प्रकाश में आई और यह सम्यक् रूप से विश्लेषित हुई। शुक्ल जी ने 'मधुमालती' की 'उपलब्ध प्रतियों' का उल्लेख तो किया है पर, कथा का विवेचन किसी खण्डित प्रति के आधार पर किया है।

डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने सर्वप्रथम मधुमालती का स्वतंत्र सम्पादन किया जो

इसी शीर्षक से सन् 1961 में प्रकाशित हुआ। इसमें गुप्त जी ने मधुमालती की उपलब्ध चारों प्रतियों का उपयोग किया है और अत्यधिक श्रम कर 'मधुमालती' के पाठ को शुद्ध और प्रामाणिक बनाया है। मधुमालती की एक प्रति का सम्पादन डॉ. शिव गोपाल मिश्र द्वारा किया गया। डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय की कृति 'सूफ़ी-काव्य-विमर्श' में 'चंदायन', 'मृगावती', और 'पदमावत' के साथ-साथ मंझन की 'मधुमालती' का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

'मधुमालती' की विशिष्टताएँ उद्घाटित होते ही समीक्षकों-लेखकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। फिर तो इस कृति और कृतिकार पर लिखने की होड़-सी लग गई। विद्वान समीक्षकों और लेखकों ने जो भी इस विषय पर लिखा। अपनी-अपनी मति और मतानुसार श्रेष्ठ लिखा। 'मंझन कृत मधुमालती पुनर्मूल्यांकन' (राज बुद्धिराजा-तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली 2002) तथा सियाराम तिवारी की पुस्तक 'मंझन' (साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1998) इस श्रृंखला की श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। डॉ. सुशील कुमार शर्मा की प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम की एक कड़ी है। परंतु मधुमालती से संबंधित होते हुए भी यह अपने पूर्ववर्ती समस्त ग्रंथों से सर्वथा मौलिक और सर्वथा अलग है। जहाँ अन्य ग्रंथों में मंझन और मंझन कृत मधुमालती का समग्र भाग संकलित और व्याख्यायित है, वहीं डॉ. सुशील कुमार शर्मा ने अपने ग्रंथ में 'मधुमालती' के केवल प्रेम तत्त्व पर अपना लेखन केंद्रित किया है। इस दृष्टि से कृति सर्वथा मौलिक है।

डॉ. सुशील कुमार शर्मा की प्रस्तुत कृति की एक और मौलिकता को उल्लिखित करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। डॉ. सुशील कुमार शर्मा ने अध्याय दो में मंझन को जायसी से अधिक निस्पृह बताया है। उनकी गवेषणात्मक लेखनी ने उक्त कथन को अकाट्य तर्कों द्वारा सिद्ध भी किया है। सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्यों का तथा उनसे संबद्ध अन्य ग्रंथों का अध्ययन मैंने किया है। परंतु इस तथ्य का उल्लेख कहीं प्राप्त नहीं हुआ कि जायसी की काव्यात्मक हार्दिक अभिलाषा यश प्राप्ति थी और मंझन की प्रेम के अमरत्व की स्थापना की। दूसरा मौलिक बिंदु डॉ. सुशील कुमार शर्मा द्वारा जो उठाया गया है, वह भी तथ्यात्मक है, कि जायसी ने अपने ग्रंथों में अपने व्यक्तित्व के संबंध में पर्याप्त प्रकाश डाला है, मंझन ने ऐसा नहीं किया। इसीलिए मंझन को जायसी की अपेक्षा अधिक निस्पृह सिद्ध करना सटीक व समीचीन है। इस मौलिक दृष्टि तथा मौलिक चिंतन के लिए डॉ. सुशील कुमार शर्मा निःसंदेह साधुवाद के पात्र हैं। डॉ. शर्मा की इस चिंतनधारा से इस क्षेत्र में शोध की और अधिक संभावनाएँ जागृत होंगी-मुझे ऐसा विश्वास है। यद्यपि भारतीय काव्य-मनीषियों ने यश प्राप्ति को काव्य-प्रयोजन का एक बिन्दु ठहराया है; परंतु मंझन ने प्रत्यक्षतः जायसी की भाँति उसकी प्राप्ति के लिए अभिलाषा प्रकट नहीं की।

'मधुमालती' में प्रेम-व्यंजना का विश्लेषण करने के पूर्व डॉ. सुशील कुमार शर्मा ने 'प्रेम' के स्वरूप को विभिन्न कोणों के माध्यम से समझने का प्रयास किया है। इस क्रम में उन्होंने प्रेम के लौकिक और पारलौकिक स्वरूपों पर तो प्रकाश डाला ही है, इसके वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक कारणों को भी संक्षिप्ततः स्पष्ट किया है-यह उनकी व्यापक और समन्वयात्मक दृष्टि का द्योतक है, अन्यथा सूफ़ी प्रेमाभिव्यंजना में वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक चर्चा का क्या काम? डॉ. सुशील कुमार शर्मा ने कम ही सही; इस दृष्टिकोण से भी 'मधुमालती' की प्रेम-व्यंजना को परखा है।

मंझन का परिचय, सूफ़ीमत का परिचय और मधुमालती की कथा तो ग्रंथ की मूल वस्तु की पृष्ठभूमि के रूप में अवतरित हैं। इनका परिचय प्राप्त किए बिना केंद्रीय तत्त्व को प्राप्त नहीं किया जा सकता। देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी के शोध छात्रों की रुचि भी मधुमालती के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने की ओर प्रवृत्त हुई है। परंतु पर्याप्त सामग्री के अभाव के कारण उन्हें निराशा हाथ लगती है। और वे शोध-कार्य अधूरा छोड़ देते हैं। प्रस्तुत कृति इस अभाव पक्ष की पूर्ति करने में पर्याप्त सहायक सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

पुस्तक का प्रमुख प्रतिपाद्य प्रेम है। प्रेम को हजारों वर्षों से देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा परिभाषित किया जाता रहा है। स्थूल और सूक्ष्म-दो रूप हैं प्रेम के। सूक्ष्म प्रेम ईश्वर है और स्थूल प्रेम वासना। पर, नियंत्रित व मर्यादित प्रेम ही ईश्वर तक साधक को पहुँचाने का साधन है। सत्य तो यह है कि प्रेम को न परिभाषित किया जा सकता है और न ही उसे वाणी से सजाया जा सकता है। यह मात्र अनुभवगम्य है। प्रेम के आनंद को 'मूक के आस्वाद' की भाँति अनुभूत किया जा सकता है। महर्षि नारद प्रेम के स्वरूप को प्रतिवेदित कुछ इस प्रकार करते हैं अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपं । मूकास्वादनवत् । प्रकाशते क्वापि पात्रे। गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्द्धमानविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम ।

यहाँ एक ज्वलंत प्रश्न यह उपस्थित होता है कि प्रेम का जन्म कैसे होता है? नारद तो मानते हैं कि "यह प्रारंभ में विषजन्य होता है, गुणों के कारण जन्मता है।" इन 'गुणों' में अन्य तत्त्वों की अपेक्षा 'सौंदर्य' प्रधान है। सौंदर्य ही प्रेम का जनक है। अन्य गुणों में शौर्य, साहस, तेजादि परिगणित किए जा सकते हैं, पर वे गौण हैं। सूफी-दर्शन का 'प्रेम' इसी सौंदर्य से जन्म लेता है। यह सौंदर्य मृगावती में व्याप्त है, पद्मावती में व्याप्त है और मधुमालती तक इसका विस्तार है। यह आवश्यक नहीं कि प्रेम-पात्र दैहिक रूप से सुंदर हो। फारसी प्रेम-कथा 'लैला-मजनू' की लैला; बताते हैं-काली थी। सौंदर्य के प्रतिमान भीप्रत्येक दृष्टि के समान नहीं होते। प्रत्येक जन की सौंदर्य-दृष्टि पृथक् पृथक् होती है। पर, यह निश्चित है

कि प्रेम और सौंदर्य का संबंध देही और देह की भाँति है। प्रेम यदि आत्मा है तो सौंदर्य देह है। सूफी काव्यों

में इसी सौंदर्य गुण-को श्रवण कर जीवात्मा उसकी प्राप्ति हेतु सचेष्ट होता है और उसके हृदय में प्रेम का उदधि हिलोरें लेने लगता है।

डॉ. सुशील कुमार शर्मा ने मधुमालती के इसी प्रेम तत्त्व की विशद, गहन और सूक्ष्म विवेचना अपनी कृति में की है। प्रायः हिंदी लेखक अपनी आलोचनात्मक कृतियों में भाषा की दुरुहता को प्राथमिकता देते हैं। ऐसे में लेखक का बुद्धि तत्त्व तो स्पष्ट हो जाता है; परंतु आम पाठक उससे दूर भागने का प्रयास करता है। यह कृति इस अवगुण से सर्वथा मुक्त है और इसीलिए पठनीय तथा रोचक भी बन पड़ी है। इसका भाषायी पक्ष स्वच्छ, सहज और बोधगम्य है।

विश्वास है, मेरी तरह अन्य सुधि पाठकों द्वारा भी प्रस्तुत कृति का स्वागत किया जाएगा।

कोलारस शिवपुरी (म. प्र.)

- डॉ. लखन लाल खरे

कृति : मेरी दृष्टि

'सूफ़ी' काव्य हिन्दी साहित्य की ऐसी अनमोल निधि है कि यदि इस साहित्य को हिन्दी साहित्य से पृथक् कर दिया जाए तो हिन्दी साहित्य कंगाल हो जाएगा। निःसंदेह, तुलसीदास हिन्दी साहित्य के शिरोमणि हैं, पर यह भी सत्य है कि उनकी कृति 'रामचरितमानस' का शैलीगत वैशिष्ट्य सूफ़ी काव्य से पूर्णतः प्रभावित और प्रेरित है। सूफ़ी-दर्शन ने भारतीय संस्कृति को बहुत गहरे तक प्रभावित किया है। सूफ़ी विचारधारा को भारतीय आलोक में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से सूफ़ी कवियों ने लौकिक प्रेम-कथाओं और भारतीय संस्कृति के समन्वय का सफल प्रयास कर अपने उदार दृष्टिकोण का परिचय दिया है। सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य ग्रंथों में प्रेम, अध्यात्म, इतिहास और लोक-संस्कृति आदि विभिन्न विषयों का प्रतिपादन कर प्रेम के संदेश को जन सामान्य तक पहुँचाया गया है। सूफ़ी कवियों की कला-चेतना प्रेम-केंद्रित है, उनका सौंदर्य-बोध प्रेम-प्रदीप्त है और उनकी जीवन-दृष्टि प्रेमोद्भासित है।

सूफ़ी मत सदैव आत्मा के शुद्धिकरण और सौंदर्योद्भूत प्रेम पर बल देता रहा है। अपने इस सिद्धांत के अलोक को प्रसारित करने के उद्देश्य से इन सूफ़ी कवियों ने भारतीय जनमानस में प्रचलित लौकिक प्रेम कथाओं को माध्यम बनाया। इन कवियों की दृष्टि में 'प्रेम की पीर' का विशेष महत्त्व है और इसे उद्भासित करने में जायसी को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि अन्य कवियों का महत्त्व कमतर है। जायसी और उनके पद्मावत पर तो स्वतंत्र एवं उपाधि परक पर्याप्त शोध-कार्य हो चुका है किन्तु मंझन और उनकी मधुमालती की ओर हिन्दी-जगत् की दृष्टि कम ही गई है।

इस दिशा में जो कार्य हुआ है, उसके अंतर्गत लालता प्रसाद सक्सेना ने 'मंझन का सौंदर्य' कृति में 'मधुमालती' में निहित सौंदर्य तत्त्व को उद्घाटित किया है। डॉ. दर्शन लाल सेठी ने 'मधुमालती का काव्य-सौंदर्य' नामक ग्रंथ में मंझन की इस अनुपम कृति के काव्य-शिल्प को ग्रहण किया है। राज बुद्धिराजा का ग्रंथ 'मधुमालती : पुनर्मूल्यांकन' मंझन के ग्रंथ के कथ्य और शिल्प पर प्रकाश डालता है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं- मध्ययुगीन प्रेमाख्यान (श्याम मनोहर पाण्डेय), सूफ़ी कवि और काव्य (सरला शुक्ल), सूफ़ी मत साधना और साहित्य (राम पूजन तिवारी) तथा भारतीय प्रेमाख्यान परंपरा (पं. परशुराम चतुर्वेदी) आदि। इन तमाम

ग्रंथों में या तो मंझन की काव्य-व्यंजना को प्राथमिकता दी गई है अथवा 'मधुमालती' के काव्य-सौंदर्य के विश्लेषण में समग्र तत्त्वों को ग्रहण किया गया है। किसी भी ग्रंथ में 'मधुमालती' में निहित प्रेम तत्त्व पर स्वतंत्र रूप से विवेचन नहीं किया गया है। इसी एक बिंदु को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत कृति के लेखन का संकल्प लिया गया है; क्योंकि प्रेम तत्त्व ही तो सूफ़ी काव्य का मूलाधार है और 'मधुमालती' में इसकी स्वतंत्र व्यंजना की जानी चाहिए।

प्रस्तुत पुस्तक पाँच अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में सूफ़ी मत और उसके सिद्धांतों का विवेचन है। द्वितीय अध्याय मंझन के व्यक्तित्व और कृतित्व को समर्पित है। तृतीय अध्याय में 'मधुमालती' ग्रंथ का सामान्य परिचय है। चतुर्थ अध्याय में प्रेम के स्वरूप का विवेचन है और अंतिम अध्याय के द्वारा 'मधुमालती' में प्रेम-व्यंजना को उद्घाटित किया गया है। इसमें प्रेमादर्श का तात्त्विक विश्लेषण किया गया है। मंझन की दृष्टि में प्रेम का स्वरूप, प्रेम और दुख, प्रेम और विरह, प्रेम-साधना तथा प्रेम-मार्ग की कठिनाइयों का सम्यक् विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत कृति के प्रकाशन के अवसर पर मुझे अपनी पूज्य माताजी स्व. श्रीमती राजवती शर्मा एवं पूज्य पिताजी स्व. श्री गंगाशरण शर्मा का बार-बार स्मरण हो रहा है। उन्होंने मुझसे जो अपेक्षाएँ कीं, मैंने उन्हें साकार किया, यह सब उनके आशीर्वाद का परिणाम है। मैं उनके प्रति विनत हूँ। सहधर्मिणी डॉ. (श्रीमती) शशिबाला शर्मा एवं पुत्री सुकृति व पुत्र उत्कर्ष का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक लेखन के समय मेरी तमाम सुविधाओं का ध्यान रखा। उनके सहयोग से ही यह कृति प्रकाश में आ सकी है।

'मधुमालती में प्रेम-व्यंजना' पुस्तक हिन्दी अध्येताओं की रुचि को किंचित भी आकृष्ट करने में समर्थ हुई अथवा इसके किसी एक विचारांश या वाक्यांश ने किसी के मस्तिष्क में अपना स्थान बनाया, तो मैं अपना श्रम सार्थक समझेंगा।

-डॉ. सुशील कुमार शर्मा

विषयानुक्रमणिका

भूमिका 5

कृति : मेरी दृष्टि 9

प्रथम अध्याय-सूफ़ीमत और उसके सिद्धांत 13

सूफ़ी शब्द की व्युत्पत्ति : सूफ़ीमत की प्रवृत्ति सूफ़ी सिद्धांत : सूफियों के विश्वास : सूफ़ीमत के लक्षण सूफ़ीमत का विस्तार : भारत में सूफ़ीमत का आगमन : प्रमुख सूफ़ी सम्प्रदाय चिश्ती सम्प्रदाय : सुहरावर्दी सम्प्रदाय : क़ादरी सम्प्रदाय फिरदौसी सम्प्रदाय : शत्तारी सम्प्रदाय : कलंदरी सम्प्रदाय मदारी सम्प्रदाय शहीदी सम्प्रदाय : प्रमुख सूफ़ी सम्प्रदायों की साधना पद्धतियाँ एवं सिद्धांत : शत्तारी सम्प्रदाय : चिश्ती सम्प्रदाय।

द्वितीय अध्याय-मंझन: व्यक्तित्व एवं कृतित्व 32

व्यक्तित्व : कृतित्व : मधुमालती का रचना स्थल मंझन और जायसी के कृतित्व की मौलिकता।

तृतीय अध्याय-मधुमालती : सामान्य परिचय 44

कृति-परिचय : कथावस्तु : मनोहर का जन्म मनोहर की मधुमालती से प्रथम भेंट : मधुमालती का मनोहर से विछोह कुमार का गृह त्याग करना : कुमार पर पड़ने वाली विपत्तियाँ और पेमा की भेंट : पेमा की मुक्ति और मधुमालती मनोहर का मिलन कुमार-कुमारी का पुनर्विछोह एवं मधुमालती का पक्षी होना : ताराचन्द से मधुमालती की भेंट : मधुमालती की पक्षी रूप से मुक्ति और उसका विवाह ताराचन्द पेमा का विवाह : दोनों कुमारों का अपने-अपने देश को प्रस्थान करना: कथानक का समापन।

चतुर्थ अध्याय-प्रेम: स्वरूप-विवेचन 60

'प्रेम' की व्युत्पत्ति : प्रेम के लक्षण प्रेम का स्वरूप प्रेम के गुण : प्रेम के प्रकार : प्रेम का वैज्ञानिक दृष्टिकोण सूफ़ियों की प्रेम-साधना : इश्क मिजाजी और इश्क हक़ीकी सौंदर्य का स्वरूप : सौंदर्य का भारतीय दर्शन, सौंदर्य की पाश्चात्य दृष्टि: सूफ़ी दर्शन और सौंदर्य : सूफ़ियों या सौंदर्य-दर्शन प्रेम, सौन्दर्य और आकर्षण ।

पंचम अध्याय-मधुमालती में प्रेम-व्यंजना 87

मधुमालती में प्रेम का स्वरूप प्रेम का आध्यात्मिक स्वरूप : आध्यात्मिक प्रेम का अन्य पक्ष: प्रेम और विरह मधुमालती के विरह वर्णन पर फारसी प्रभाव: फारसी प्रेम विरह का स्वरूप वियोग पक्ष में ऊहात्मकता : मधुमालती में लौकिक प्रेम की व्यंजना लौकिक प्रेम के विविध पक्ष : संतान प्रेम मित्र प्रेम मानवीयता से प्रेम।

उपसंहार 128

संदर्भ ग्रंथ-सूची 131

प्रथम अध्याय

सूफ़ीमत और उसके सिद्धांत

सूफ़ी शब्द की व्युत्पत्ति

'सूफ़ी' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में यथार्थपरक और तथ्यपरक अन्वेषणात्मक दृष्टिकोण अब तक प्राप्त नहीं हो सका है। विद्वानों ने 'सूफ़ी' शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ अपने-अपने ढंग से ग्रहण करने का प्रयास किया है। कतिपय विद्वानों ने 'सूफ़ी' का संबंध 'सफ़' से स्थापित किया है जिसका अर्थ है-अग्रिम पंक्ति में खड़ा होना। इस संबंध के अनुसार, सूफ़ी वे हैं जिन्हें क़यामत के दिन अल्लाह के सामने सबसे आगे प्रथम पंक्ति में खड़ा किया जाएगा। ऐसा इसलिए कि उन्होंने अपने जीवन में अल्लाह के स्मरण के अतिरिक्त अन्य कार्य नहीं किया। 'सफ़ा' शब्द भी 'सूफ़ी' की एक व्युत्पत्ति मूलक कल्पना है। 'सफ़ा' का अर्थ है- पवित्रता, शुद्धता। अर्थात्, जिसका अन्तःकरण सांसारिक विषय-वासनाओं से मुक्त होकर पवित्र हो गया है, वह सूफ़ी है। एक और मान्यता के अनुसार, 'सूफ़ी' शब्द 'सुफ्फा' से बना है। जब हजरत मोहम्मद साहब ने मक्का से यसरीब के लिए हिजारत की, तब उनके कुछ अनुयायी भी मोहम्मद साहब के साथ चल दिये। मोहम्मद साहब रसूल थे, पैगम्बर थे, उन्हें सांसारिक आकर्षण से वितृष्णा थी। इन्हीं का अनुसरण इनके उन अनुयायियों ने किया था, जो संसार से विरक्त हो चुके थे। हजरत मोहम्मद साहब ने जो मस्जिद बनवाई थी, ये विरक्त उस मस्जिद के आगे बने चबूतरे पर बैठते थे और ऊनी वस्त्र पहनते थे। इसीलिए ये 'अहले सुफ्फा' कहलाने लगे, जिसका तात्पर्य है-चबूतरे पर बैठे व्यक्ति ।

अधिकतर विचारक और विद्वान यह मानते हैं कि 'सूफ़ी' शब्द सूफ़ से बना है। सूफ़ से तात्पर्य है-ऊन। ये विद्वान भाषा-विज्ञान के आधार पर 'सूफ़' को ही 'सूफ़ी' का व्युत्पत्ति मूलक शब्द मानते हैं। इनके अनुसार भाषा विज्ञान के आधार पर सफ़ा से सफ़वी, सफ़ से सफ़ी और सुफ्फा से सुफ्फ़ी होगा। डॉ. नरेश भी 'सूफ़ी' की व्युत्पत्ति सूझ से मानते हुए लिखते हैं-कतिपय सूफ़ियों ने भी सूफ़ी शब्द की व्युत्पत्ति 'सूफ़' शब्द से ही स्वीकार की है। खल्दून तथा हुज्वेरी जैसे सूफ़ी विचारकों

ने 'सूफ़ी' शब्द को 'सूफ' से बना ही स्वीकार किया है'हमारे विचार में 'सूफ़ी' शब्द की उत्पत्ति 'सूफ़' शब्द से ही हुई है। इस्लाम से पूर्व साधुओं में सूफ़ के वस्त्र पहनना चिरकाल से प्रचलित था। ईसा का बपतिस्मा करने वाले सेंट जॉन को भी सूफ़धारी बताया जाता है। संसार से विरक्त लोगों के लिए प्राचीन अरबी साहित्य में भी सूफ़धारी विशेषण का प्रयोग हुआ है। इस्लाम के आरंभिक वर्षों में भी मुस्लमान साधक सूफ के वस्त्रों का प्रयोग करते रहे हैं। अबू बक्र के संसार से विरक्त होकर 'गिलीम' (ऊनी वस्त्र) धारण करने की कहानी से भी यही संकेत प्राप्त होता है।'" व्याकरणिक और ऐतिहासिक दृष्टि से 'सूफ़' ही 'सूफ़ी' के लिए सटीक है। परन्तु 'सुफ्फ़' शब्द पर भी विचार किया जाना चाहिए। 'सूफ्फ़' और 'सूफ़' शाब्दिक रूप से भिन्न हो सकते हैं, परन्तु अभिप्रेत दोनों के प्रायः समान हैं। अतः यह संभव है कि 'सुफ्फ़' से 'सुफ्फ़ी' बना हो और 'सुफ्फ़ी' का अपभ्रंश 'सूफ़ी' हो-ऐसा मेरा मत है।

सूफ़ीमत की प्रवृत्ति

'इस्लाम' के उदय के पूर्व ही ईसाई, नव-अफ़लातूनी, नास्तिक एवं बुद्धमत प्रचलन में आ चुके थे, अत सूफ़ी मत पर इन मतों का प्रभाव पड़ना ही था। विद्वानों ने सूफ़ी मत पर भारतीय दर्शन के प्रभाव को भी खोजने का प्रयास किया है और यह सर्वथा असत्य भी नहीं हो सकता, इसके कारण हैं। अरब के भारत से प्रारंभ से ही व्यापारिक संबंध रहे हैं। अरब के व्यापारी भारत आते थे और वे यहाँ की धर्म-संस्कृति के चर्चे अपने देश में किया करते थे। इतना ही नहीं, भारतीय दर्शन यूनान होते हुए भी अरब पहुँचा। डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' का मत है कि "यह प्रभाव नवीं सदी में पड़ा, जब यूनानी पुस्तकों का अनुवाद अरबी में किया जाने लगा था। तसब्बुफ पर सबसे अधिक प्रभाव हिन्दुत्व का ही माना जाना चाहिए, क्योंकि यह दुहरा था, अर्थात् एक तो यूनान के माध्यम से, दूसरे सीधे हिन्दुस्तान से जाने वाले हिन्दू और बौद्ध संतों एवं पंडितों के द्वारा। वेदांत के मोक्ष और बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग ही उनका 'तरीका या सलूक' हुआ। इसी प्रकार सुफ़ियों ने भारतीय योग के 'ध्यान' को 'मरकबा' कहकर अपनाया एवं भारतीय योगियों के चमत्कार ही सूफ़ियों के यहाँ करामात या मोजजा कहलाने लगे। सूफ़ियों के बीच स्वच्छता, पवित्रता, सत्य और अपरिग्रह पर जो इतना जोर है तथा उनमें माला जपने की जो

प्रथा है, उन सबके पीछे शुद्ध भारतीय संस्कार का ही प्रभाव माना जा सकता है।"" इस संबंध में सबसे पक्षपात रहित मत प्रोफेसर हुमायूँ कबीर का है जिन्होंने अपनी पुस्तक 'ओवर हेरीटेज' में लिखा है कि- "सूफ़ी मत का आधार कुरान में था,

किन्तु भारतीय विचारधारा का इस पर अत्यंत गंभीर प्रभाव पड़ा है।" इसमें कोई दो राय नहीं है कि सूफ़ी मत का उत्स इस्लाम से है। कालांतर में अन्य धर्मों और पंथों का प्रभाव भी इस पर पड़ता रहा है। यह तो निश्चित है कि हजरत मोहम्मद साहब की तिजारत के पश्चात् ही सुफ़ियों का उदय हुआ, जो संसार से विरक्त हो चुके थे। धीरे-धीरे इनकी संख्या में वृद्धि होती गई और आगे चलकर इस मत का शनैः-शनैः विकास होता गया। इतना ही नहीं, आगे चलकर सूफ़ी मत भी अन्य पंथों की भाँति अनेक सम्प्रदायों में विभक्त हो गया। भारत में प्रवेश करने पर तो सूफ़ी मत ने एक श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया-हिन्दू-मुस्लिम समन्वय के रूप में।

सूफ़ी-सिद्धांत

डॉ. रामधारी सिंह दिनकर ने डॉ. बुकेट को उद्धृत करते हुए सूफ़ी मत के विश्वासों और डॉ. खलीफा अब्दुल हकीम को उद्धृत करते हुए इस मत के लक्षणों की सूची इस प्रकार प्रस्तुत की है-

सूफ़ियों के विश्वास

1. अस्तित्व केवल परमात्मा का है; वह प्रत्येक वस्तु में है और प्रत्येक वस्तु परमात्मा में है।

2. दुनिया की हर चीज परमात्मा से निकलती है और परमात्मा के बिना किसी भी चीज का कोई अस्तित्व नहीं है।

3. सभी धर्म व्यर्थ हैं। हाँ, उनका एक उपयोग है कि वे एक ही सत्य की ओर इंगित करते हैं। इनमें से सबसे उपयोगी धर्म इस्लाम है, जिसका सच्चा दर्शन सूफ़ी मत का दर्शन है। 4. पाप और पुण्य में कोई भेद नहीं है, क्योंकि दोनों की सृष्टि परमात्मा ने की है।

5. मनुष्यों के संकल्पों की प्रेरणा और निश्चयन परमात्मा करता है, अतएव मनुष्य अपने कर्मों में स्वाधीन नहीं है।

6. आत्मा शरीर के पिंजड़े में कैद है; किन्तु पिंजड़ा पीछे बना और पक्षी-आत्मा पहले से ही मौजूद रहा है। पिंजड़े के टूटे बिना पक्षी स्वाधीन नहीं हो सकता। अतएव, मृत्यु काम्य है, क्योंकि मृत्यु के बाद ही आत्मा परमात्मा को प्राप्त करती है।

7. सूफ़ी का मुख्य कर्त्तव्य ध्यान और समाधि है, प्रार्थना और नाम-स्मरण है। इन्हीं तरीकों से वह परमात्मा-मिलन की राह पर अग्रसर होता है।

सूफ़ी मत के लक्षण

1. सारी वास्तविकता एक है अर्थात् संसार में हम जो कुछ भी देखते हैं, वह एक ही सत्ता का विस्तार है। प्रकृति के सभी रूप एक ही सत्य के विभिन्न पहलू हैं।

2. जैसे सभी चीजें एक ही तत्त्व से निकली हैं, वैसे ही ये सब की सब उसी तत्त्व में लौट जाने को बेकरार हैं।

3. सत्य का ज्ञान बुद्धि से भी हो सकता है, यदि बुद्धि खंडित या पक्षपात युक्त न हो। किन्तु तर्क उसमें सहायक नहीं हो सकता। तर्क से वास्तविकता का सारा ज्ञान नहीं होता है। वास्तविकता के संपूर्ण ज्ञान के लिए बुद्धि की अपेक्षा भावना और अनुभूति अधिक विश्वसनीय है।

4.मनुष्य-जीवन का असली लक्ष्य यह है कि धार्मिक अनुभूतियों के द्वारा मनुष्य अंतिम सत्य का साक्षात्कार करे और उस सत्य के साथ एकाकार हो जाए।

5. यह धार्मिक अनुभूति ही प्रेम है। प्रेम के भीतर, स्वाभाविक रूप से सत्य का ज्ञान निहित रहता है।

6. सभी धार्मिकता और ऊँची नैतिकता का आधार प्रेम है। प्रेम के बिना धर्म और नीति दोनों निर्जीव हो जाते हैं। प्रेम के प्रकाश के बिना बुद्धि भी अंधकार में भटकती रहती है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सूफ़ी मत में प्रेम को प्रधान रूप से स्वीकार किया गया है। यह प्रेम सौंदर्य जनित है। इस सौंदर्य जनित प्रेम की प्राप्ति से ही मुक्ति हो सकती है।

सूफ़ी मत में गुरु का सर्वोपरि स्थान है। गुरु ही वह मार्ग साधक को बतलाता है, जो परम सत्ता या निर्वाण की ओर जाता है। गुरु को सूफ़ी मत में पीर अथवा शेख कहते हैं। सूफ़ी-परम्परा में पीर का सर्वाधिक महत्त्व है। जिस साधक का कोई पीर नहीं, उसकी साधना निष्फल होती है। पीर और मुर्शिद (शिष्य) का घनिष्ठ संबंध है-सूफ़ी मत में। अमीर खुसरों के बारे में कहा जाता है कि जब इनके पीर हजरत निजामुद्दीन चिश्ती का इंतकाल हुआ, तब खुसरो कहीं दूर थे। समाचार प्राप्त होने पर खुसरो आए और यह दोहा कहते हुए उन्होंने भी अपने पीर की मजार पर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली :

गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।

चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देसु ।।

सूफ़ी मत का विस्तार

सूफ़ी दर्शन पर विभिन्न मतों का न्यूनाधिक प्रभाव हो सकता है, पर इस तथ्य से असहमत नहीं हुआ जा सकता कि उसके विस्तार में इस्लाम की भूमिका महती रही है। इसके प्रारंभिक इतिहास को उद्घाटित करते हुए डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय लिखते हैं- "सूफ़ी मत का इतिहास 623 ई. के लगभग प्रारंभ होता है। प्रारंभ में सूफ़ी मत में दर्शन का प्रवेश नहीं था। इस्लाम एक प्रवृत्ति मूलक धर्म था। पहली बार इसमें कतिपय ऐसे व्यक्ति सामने आए, जिनमें भक्ति का सन्निवेश हुआ। आत्मा का शुद्धिकरण आरंभ में हुआ। इन व्यक्तियों में बसरा के अलहसन का नाम उल्लेखनीय है जिनका जीवन काल 643 से 728 ई. ठहराया गया है। इस युग के अन्य सूफ़ी इब्राहिम बिनअजम (मृ. 783 ई.), अयाज़ (मृ. 801 ई.), राबिया (801 ई.) आदि हैं। राबिया बसरा की रहने वाली थी। राबिया में सर्वप्रथम प्रेम-दर्शन का उदात्त और प्रखर रूप सामने आता है। एक स्थान पर वह कहती है- "खुदा के प्रेम ने मुझे इतना अभिभूत कर दिया है कि मेरे हृदय में अन्य किसी के प्रति न तो प्रेम शेष रहा, घृणा शेष रही।"

प्रारंभिक सूफ़ियों में मंसूर हल्लाज का ऐतिहासिक महत्त्व है। मंसूर प्रेम की उस अवस्था में पहुँच चुके थे, जहाँ उन्होंने उद्घोषणा की थी कि 'अन हल्-हक' - अन हल्-हक्; जिसे भारतीय वेदांत में 'अहं ब्रह्मस्मि' कहा गया है। मंसूर की यह घोषणा उन्हें अच्छी नहीं लगी, जो इस्लाम के कट्टर समर्थक थे, क्योंकि उनकी यह उद्घोषणा इस्लामी मान्यता के सर्वथा प्रतिकूल थी। परिणाम यह हुआ कि उन्हें सन् 922 में मौत के घाट उतार दिया गया। सूफ़ी मत उस समय लगभग शैशवावस्था में ही था। इस घटना से इसके विस्तार में गतिरोध-सा उत्पन्न हो गया, सूफ़ी मतवादियों को इस्लाम से समझौता करना पड़ा क्योंकि सूफ़ी मत का इस समय तक कोई स्पष्ट दर्शन खड़ा नहीं हो सका था।

उपर्युक्त घटना के पश्चात् सन् 995 ई. में अबू बकर अल् कला बाजी ने 'किताबुल तारुफ मजहबे अहले तसब्बुफ' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया जिसे इस्लाम से मान्यता प्राप्त थी। यही वह काल था जब सूफ़ी मत के विद्वान और संत हुज्वेरी ने 'कश्फुल महजूब' की रचना की। इस ग्रंथ में सूफ़ी सिद्धांतों का निर्धारण किया गया है। हुज्वेरी का निधन सन् 1092 में हुआ, परन्तु अब तक सूफ़ियों के लगभग 12 सम्प्रदाय अस्तित्व में आ चुके थे। हुज्वेरी के पश्चात् इस क्षेत्र में जो अत्यंत चर्चित नाम है, वह है-अलग़ज़ाली का, जिनका निधन सन् 1111 में हुआ था। खुरासान में जन्मे इस दार्शनिक संत ने अनेक ग्रंथों का अध्ययन किया था और

'इहिया उल अलूम' नामक श्रेष्ठ ग्रंथ की रचना की थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अलग़जाली का प्रभाव इतना बौद्धिक और चमत्कारिक था कि इनके पश्चात् सूफ़ी मत को इस्लाम ने मान्यता प्रदान कर दी।

अलग़जाली तक आते-आते सूफ़ी मत में स्पष्ट रूप से दो धाराएँ परिलक्षित होती हैं। एक धारा वह है जिसका प्रवर्तन मंसूर हल्लाज ने किया तथा उनके अनुयायियों ने उसका प्रचार किया। दूसरी धारा में वे समझौतावादी हैं, जो कुरान शरीफ से पृथक् जाते हुए प्रतीत नहीं होते और न ही हुए। अलग़ज़ाली के समय तक सूफ़ी मत पर्याप्त रूप से स्थिर हो चुका था। प्रख्यात् सूफी संत इब्नुल अरबी (मृत्यु सन् 1240) का दृष्टिकोण एकेश्वरवाद से थोड़ा भिन्न तो था, परन्तु उनका यह सिद्धांत भारतीय वेदान्त के अधिक निकट था। "कुरान जहाँ पर यह कहता है कि ईश्वर केवल एक है, वहाँ इब्नुल अरबी कहते हैं- 'केवल ईश्वर है और कुछ नहीं।' कुरान के समझौता से चलने वाले सूफ़ी कहते हैं- ईश्वर एक है, निर्माता है, स्वामी है, पूज्य है। हम निमित्त हैं, बंदे हैं, पूजा करने वाले हैं, गुलाम हैं। इब्नुल अरबी कहते हैं, कि ईश्वर के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह विचारधारा वेदांत के दर्शन के करीब है जिसमें 'सर्व' खल्विदंब्रह्म' कहा गया है। इब्नुल अरबी भारतीय दर्शन से परिचित थे। उन्होंने योग के एक ग्रंथ 'अमृत कुण्ड' का अरबी में अनुवाद कराने में दमिश्क के एक सूफ़ी को सहायता पहुँचाई थी। इब्नुल अरबी के सिद्धांतों के अनुकूल ही मंझन ने 'मधुमालती' की रचना की है। मंझन के गुरु शेख मोहम्मद गौस थे। कहा जाता है कि उन्होंने भी अमृत कुण्ड का अनुवाद किया था।""

भारत में सूफ़ी मत का आगमन

इतिहासकारों और विद्वानों का मत है कि हुज्वेरी के आगमन के साथ ही भारत में सूफ़ी मत का प्रवेश हुआ। हुज्वेरी का मूल वास स्थान अफगानिस्तान का गजनी शहर था। ये तुर्किस्तान और सीरिया के भ्रमण पर निकले और घूमते-घूमते अंततः लाहौर को इन्होंने अपना स्थाई ठिकाना बनाया। लाहौर में ही सन् 1026 ई. में इनका निधन हुआ। यद्यपि हुज्वेरी के आगमन के साथ भारत में सूफ़ी मत का प्रवेश हुआ अवश्य; पर ये अपना कोई विशेष प्रभाव यहाँ छोड़ न सके। सन् 1140 में ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती का आगमन भारत में हुआ जिन्होंने इस देश में चिश्तिया सम्प्रदाय की नींव रखी। तदनन्तर सूफ़ियों के अनेक सम्प्रदायों का यहाँ विस्तार हुआ तथा इनकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ भारत में पर्याप्त पल्लवित-पुष्पित हुईं।

प्रमुख सूफ़ी सम्प्रदाय

भारत में जिन सूफ़ी सम्प्रदायों का विकास हुआ उनमें चिश्ती, कादिरी, सुहरावर्दी और नक्शबंदी प्रमुख हैं। इन चार सम्प्रदायों के अतिरिक्त कलंदरी, शत्तारी, मदयनी और फ़िरदौसी सम्प्रदाय भी भारत में महत्त्वपूर्ण रहे हैं।

चिश्ती सम्प्रदाय

चिश्ती सम्प्रदाय का उद्भव और विकास अफगानिस्तान के चिश्त शहर में हुआ था, इसीलिए अपने शहर के नाम पर यह चिश्ती सम्प्रदाय कहलाया। इसके प्रवर्तक हजरत अबू अहमद अब्दाल चिश्ती थे, जिनका समय सन् 874 से 956 ई. माना जाता है। अबू अहमद के पिता चिश्त शहर के गणमान्य नागरिक थे। सीरिया में अबू इस्हाक्क़ शामी नामक विख्यात सूफी संत थे। हजरत अबू अहमद अब्दाल ने इनसे दीक्षा प्राप्त की। अबू इस्हाक़ भ्रमण करते-करते बग़दाद शहर जा पहुँचे। यहाँ ख़्वाजा मुमशाद दीनूरी का शिष्यत्व इन्होंने ग्रहण किया। ख़्वाजा मुमशाद दीनूरी ने अबू इस्हाक़ को चिश्त जाने का आदेश दिया और ये चिश्त आ गये। दीर्घकाल तक चिश्त में निवास करने के पश्चात् अपने शिष्य अबू अहमद को अपनी विरासत सौंप कर ये वापस सीरिया चले गये। अबू अहमद ने चिश्त में अपने गुरु के दायित्वों को भली-भाँति पूर्ण किया। अबू अहमद के पश्चात् इनके बेटे अबू मोहम्मद और इनके पश्चात् इनके भानजे ख़्वाजा यूसुफ़ ने अबू अहमद की धरोहर को संभाला। युसुफ के बेटे ख़्वाजा मौदूद चिश्ती विख्यात् सूफी संत रहे हैं। इनके दो शिष्यों-ख़्वाजा रुक्नुद्दीन मोहम्मद संजानी और ख़्वाजा हाजी शरीफ़ ने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। इस समय तक चिश्ती की खानकाह ने अत्यंत प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी।

ख़्वाजा मौदूद का निधन होते ही चिश्त में राजनैतिक परिवर्तनों के कारण वहाँ का समूचा परिदृश्य परिवर्तित हो गया। तुर्कों और कबीलों के युद्ध के कारण चिश्त की शांति भंग हो गई। मोहम्मद गयासुद्दीन ने अपना राज्य स्थापित करते ही शांति व्यवस्था को पुनः स्थापित किया, परन्तु सूफी संतों का मन चिश्त में लग न सका। इस समय चिश्त की खानकाह के स्वामी ख़्वाजा मुईनुद्दीन थे, जो ख़्वाजा ग़यासुद्दीन के बेटे थे। ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्त छोड़कर भारत आ गये और अजमेर को इन्होंने अपना ठिकाना बनाया। ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती के शिष्यों में से ख्वाजा बख्तियार काकी और शेख हमीदुद्दीन नागौरी ने अत्यंत लोकप्रियता प्राप्त की। इसी प्रकार ख़्वाजा बख्तियार काकी के एक प्रमुख शिष्य शेख फ़रीदुद्दीन मसऊद

गंजेशकर (बाबा फ़रीद) और बाबा फ़रीद के शिष्य हज़रत निजामुद्दीन औलिया ने चिश्ती सम्प्रदाय के प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाई। हिन्दी के आदिकाल के विख्यात कवि अमीर खुसरो इन्हीं हजरत निजामुद्दीन औलिया के परम प्रिय शिष्य थे।

सुहरावर्दी सम्प्रदाय

भारत में सुहरावर्दी सम्प्रदाय का प्रभाव प्रारंभ में पंजाब तथा बंगाल में रहा, जो शीघ्र ही बिहार, उड़ीसा और गुजरात आदि राज्यों में विस्तार पा गया। इस सम्प्रदाय के संस्थापक शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी थे। शेख अबू-उन्-नजीब इन्हें सूफ़ी मत में लाये। सूफ़ी साधना पर व्यापक प्रकाश डालते हुए इन्होंने 'अवारिफुल्मआरिफ़' नामक एक ग्रंथ का भी प्रणयन किया था जिसमें सूफ़ी मत के सिद्धांतों का विश्लेषण है। शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी के दो प्रिय शिष्य थे-शेख बहाउद्दीन जक़रिया तथा शेख जलालुद्दीन तबरेजी। बंगाल में शेख जलालुद्दीन तबरेजी ने लखनौती में अपनी खानकाह स्थापित की। मुल्तान और इसके आसपास के क्षेत्रों में शेख बहाउद्दीन जकरिया का प्रभाव प्रचुर मात्रा में था।

सुहरावर्दी सम्प्रदाय के अनेक सूफी संत हुए हैं जिन्होंने इस सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार किया। इसी सम्प्रदाय के शेख फखरुद्दीन ने दक्षिण भारत में, सैयद बुरहानुद्दीन कुतबे आलम ने गुजरात में तथा शेख हसन लालू ने कश्मीर में सुहरावर्दी सम्प्रदाय की नींव को दृढ़ किया। फ़ारसी के कवि शेख सादी तथा मिस्र के कवि उमर-बिनफ़ारिज ने सुहरावर्दी सम्प्रदाय के सिद्धांतों के अनुकूल ही अपनी काव्य-रचना की थी। ये दोनों कवि शेख सुहरावर्दी के प्रिय शिष्य थे।

क़ादरी सम्प्रदाय

क़ादरी सम्प्रदाय का प्रवर्तन तो बारहवीं शताब्दी में हो चुका था, परन्तु भारत में इस सम्प्रदाय का प्रवेश लगभग चार सौ वर्षों के पश्चात् सोलहवीं शताब्दी में हुआ। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक शेख अब्दुल कादिर जीलानी थे, जिनका जन्म सन् 1077 में जीलान नामक शहर में हुआ था। इन्होंने बग़दाद में धार्मिक शिक्षा प्राप्त की और फिर फ़क़ीरी वेश में अनेक देशों में भ्रमण करते रहे। 'अल्-फ़तह-अल-रब्बानी' और 'फुतूहुल्गालिब' नामक दो ग्रंथों में इनके धार्मिक प्रवचन एवं उपदेश संग्रहीत हैं। क़ादरी सम्प्रदाय अपने प्रवर्तक के समय में ही अत्यन्त लोकप्रिय हो गया था, जो बगदाद से बाहर तुर्की, सीरिया और मिस्र तक जा पहुँचा। इतना ही नहीं, सोलहवीं

शताब्दी तक तो यह अरब देशों सहित पूर्वी सूडान, पश्चिमी सूडान, ट्यूनिश, मोरक्को, अफ्रीका तथा मलेशिया आदि देशों में पर्याप्त प्रसार पा गया। इसी काल में इसका प्रवेश भारत में हुआ। भारत में इसके आदि प्रवर्तक हज़रत मोहम्मद बंदगी ग़ौस माने जाते हैं।

हजरत मोहम्मद बंदगी ग़ौस तुर्की के निवासी थे। सूफ़ी मत के प्रचार-प्रसारार्थ ये खुरासान होते हुए सन् 1539 ई. में भारत में प्रविष्ट हुए। यहाँ पर उच नामक स्थान पर इन्होंने अपनी खानकाह स्थापित की। इनके बड़े बेटे हज़रत अब्दुल क़ादिर सानी तथा क़ादिर सानी के बेटे हज़रत अब्दुल रज्जाक़ के उत्तराधिकारत्व में क़ादरी सम्प्रदाय का पर्याप्त विस्तार हुआ और सिंध-पंजाब से लेकर उत्तरी भारत तक यह सम्प्रदाय खूब फला-फूला।

क़ादरी सम्प्रदाय को ऊँचाइयाँ प्रदान करने का श्रेय शेख दाऊद को है। अब्दुल रज्जाक़ के पौत्र शेख हमीद (जिनका निधन सन् 1571 में हुआ था) के अत्यधिक प्रिय शिष्य थे-शेख दाऊद। शेख दाऊद की प्रसिद्धि से प्रभावित होकर सम्राट अकबर ने उन्हें आगरा राजदरबार में लाने का बहुत प्रयास किया; परन्तु शेख दाऊद ने अकबर के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया। इसी सम्प्रदाय में हज़रत मियाँ मीर विख्यात् सूफ़ी हुए हैं। "क़ादिरी सम्प्रदाय को हज़रत मियाँ मीर (सन् 1531-1635) के कारण अद्भुत लोकप्रियता तथा राजकीय सम्मान प्राप्त हुआ। मियाँ मीर का वास्तविक नाम मीर मोहम्मद था। उनके माता-पिता दोनों ही क़ाजियों के परिवार से थे तथा दोनों सूफ़ी साधक थे। फलतः बालक मीर मोहम्मद को बचपन में ही अध्यात्म-साधना के संस्कार प्राप्त हो गये थे। आगे चलकर वे अपने समय के अद्भुत प्रतिभाशाली सूफी संत सिद्ध हुए। मुग़ल सम्राट जहाँगीर तथा मुग़ल राजकुमार दाराशिकोह को मियाँ मीर के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। मियाँ मीर ने लाहौर में अपनी खानक़ाह स्थापित की। सिख गुरुओं के साथ मियाँ मीर का प्रगाढ़ स्नेह रहा तथा अमृतसर के स्वर्ण मंदिर की नींव मियाँ मीर ने ही रखी थी।

क़ादरी सम्प्रदाय को समूचे भारत में अत्यधिक आदर प्राप्त हुआ। उत्तरी भारत में तो इसे महत्त्व प्राप्त हुआ ही, दक्षिण भारत में भी इस सम्प्रदाय के अनेक संतों की खानकाहें स्थापित हुई। सैयद इस्माईल जीलानी, शेख हुसैन लाहोरी, शेख माधौ, शेख तक़ी क़ादरी, शेख बहलोल दरिया, शेख अबुल फ़तह आदि विख्यात संत इस सम्प्रदाय में हुए हैं और इनका राजपरिवारों से लेकर समाज पर बहुत प्रभाव रहा है।

फ़िरदौसी सम्प्रदाय

अपने उद्भव-काल से लेकर ही सूफ़ी मत का समर्थन और विरोध होता रहा है। सत्य के प्रति अपने आग्रह पर अडिग रहने वाले अनेक सूफ़ियों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। फ़िरदौसी मत या फ़िरदौसी सूफ़ी सम्प्रदाय के प्रवर्तक शेख सैफुद्दीन बखारजी (जिनका निधन सन् 1260 ई. में माना जाता है) भी सूफ़ी मत के घोर विरोधी थे। शेख सैफुद्दीन की आस्था शेख नजमुद्दीन में थी। शेख नजमुद्दीन सूफ़ी मत के पीर थे। बखारजी, शेख नजमुद्दीन के शिष्य हो गये और कालान्तर में इन्होंने जिस सम्प्रदाय की नींव रखी, वहीं फ़िरदौसी सम्प्रदाय के रूप में जाना गया।

शेख बखारजी के शिष्य ख़्वाजा बदरुद्दीन ने भारत आकर अपने सम्प्रदाय का प्रचार किया। इस समय यहाँ चिश्ती सम्प्रदाय की धूम मची थी। ख़्वाजा बदरुद्दीन ने चिश्ती सम्प्रदाय के सूफी संतों से मधुर संबंध स्थापित किये। इस सम्प्रदाय में अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे। बंगाल, बिहार आदि प्रदेशों में यह सम्प्रदाय पर्याप्त पल्लवित-पुष्पित हुआ और अनेक स्थानों पर इस सम्प्रदाय की खानक़ाहें स्थापित हुई।

शत्तारी सम्प्रदाय

शत्तारी सम्प्रदाय के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालते हुए डॉ. नरेश लिखते हैं कि "शत्तारी सम्प्रदाय का उदय एक स्वतंत्र सम्प्रदाय के रूप में नहीं हुआ था, अपितु बिस्तामी सम्प्रदाय की भारतीय शाखा को ही इस नाम से अभिहित किया गया था। इस सम्प्रदाय की आधारभूमि बिस्तामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक अबू यज़ीद बिस्तामी की साधना पद्धति ही है। बिस्तामी सम्प्रदाय के प्रमुख प्रचारक अबू यज़ीद-अल्-इश्क़ी ने ट्रांस-ओक्सियाना में इसका भरपूर प्रचार किया तथा यह सम्प्रदाय 'इश्क़िया सम्प्रदाय' के नाम से जाना जाने लगा। ईरान, जावा, सुमात्रा आदि देशों में इसका बिस्तामी सम्प्रदाय ही प्रचलित रहा। इधर भारत में शाह अब्दुल्ला शत्तार के नाम पर इसी सम्प्रदाय को शत्तारी कहा गया।

"शाह अब्दुल्ला शत्तार बुखारा के रहने वाले थे, जहाँ वे शेख मोहम्मद आरिफ़ द्वारा इश्क्रिया (बिस्तामी) सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये थे। विभिन्न सूफ़ी केंद्रों को देखने तथा तत्कालीन सूफी संतों के साथ सत्संग की लालसा के कारण उन्होंने नीशापुर, ईराक्क तथा आयजरबायज्ञान की यात्रा की। आयज़रबायजान से वे भारत आ गये। यह घटना पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथम दशक की है।

शाह अब्दुल्ला ने भारत में ही नहीं, भारत से बाहर भी इस सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाने का सफल प्रयास किया। जहाँ एक ओर भारत में यह सम्प्रदाय राजस्थान, गुजरात, बंगाल तथा मध्यप्रदेश में खूब फैला, वहीं दूसरी ओर मलाया और इण्डोनेशिया में भी इसका खूब प्रचार हुआ। उनकी पुस्तक 'लतायफ़े-गैबिया' इस सम्प्रदाय के साधकों के लिए मार्गदर्शक पुस्तक बनी। उनकी मृत्यु 1485 ई. में माण्डू के स्थान में हुई।""

'मधुमालती' नामक प्रेमाख्यानक काव्य के कवि मंझन इसी शत्तारी सम्प्रदाय के थे, अतः यह आवश्यक है कि इस सम्प्रदाय पर विस्तार से प्रकाश डाला जाए। इसके लिए पुनः डॉ. नरेश को उद्धृत करना समीचीन होगा। इस सम्प्रदाय के विकास को रेखांकित करते हुए वे लिखते हैं- "शत्तारी सम्प्रदाय को बंगाल में प्रचारित करने का श्रेय शाह अब्दुल्ला के शिष्य एवं खलीफ़ा शेख मोहम्मद आला की है। उनके बाद बंगाल में इस सम्प्रदाय का संचालन उनके शिष्य जुहूर हाजी बाबा हमीद ने किया। उत्तर प्रदेश में इस सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार शाह अब्दुल्ला के एक अन्य खलीफ़ा शेख हाफ़िज जौनपुरी ने किया। शेख बुद्धन शत्तारी शेख हाफ़िज के ही खलीफा थे, जो अंततोगत्वा पानीपत में आ बसे थे। पानीपत में ही उनकी मृत्यु हुई। उनके शिष्यों में शेख वली शत्तारी और शेख बहाउद्दीन अपने समय के प्रसिद्ध संत हुए हैं। सोलहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में शेख फूल तथा उनके छोटे भाई शेख मोहम्मद ग़ौस बहुत प्रसिद्ध शत्तारी सूफी संत हुए हैं। शेख ग़ौस के पुत्र शेख बुध अब्दुल्ला यद्यपि लगभग चालीस वर्ष अकबर की सेना में रहे, लेकिन उनकी साधना निरंतर चलती रही। जहांगीर के सिंहासनारूढ़ होने पर वे ग्वालियर चले गये और उन्होंने अपने पिता शेख ग़ौस के मकबरे के निकट अपनी खानक़ाह स्थापित कर ली।" यही शेख मोहम्मद गौस मंझन के गुरु थे, जिन्हें मंझन ने अपने ग्रंथ 'मधुमालती' में 'कालपुरुष' कहकर सम्मान व्यक्त किया है।

मध्यप्रांत में माण्डू तथा ग्वालियर शत्तारी सम्प्रदाय के प्रमुख केंद्र बने रहे। शेख मोहम्मद गौस का व्यक्तित्व अत्यंत विराट था। इनके बड़े बेटे नूरुद्दीन जियाउल्लाह ने आगरा में अपनी खानक़ाह स्थापित की। इतना ही नहीं, शेख ग़ौस के भाइयों तथा शिष्यों ने भी मानिकपुर, जैनाबाद, बड़ौदा अहमदाबाद आदि स्थानों पर खानक़ाहें स्थापित कीं और शत्तारी सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार किया।

क़लंदरी सम्प्रदाय

कलंदरी सम्प्रदाय का प्रवेश जब भारत में हुआ था, उस समय यहाँ सिद्धो,

नाथों तथा योगियों का बाहुल्य था। इस सम्प्रदाय के अनुयायी जब विदेशों से भारत आये तब उनका संपर्क यहाँ के बाबा-वैरागियों से हुआ। भारतीय साधुओं की देखा- देखी क़लंदरी सम्प्रदाय के सूफ़ियों ने भी कानों में मुद्रा पहनना तथा भाँग आदि नशीले पदार्थों का सेवन करना प्रारंभ कर दिया। इस सम्प्रदाय की अनेक शाखा-प्रशाखाएँ हुई, जिन्होंने पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि में अपनी खानक़ाहें स्थापित कीं। हरियाणा प्रदेश के करनाल में अब भी कलंदर शाह की अत्यंत प्राचीन एवं विख्यात मजार स्थापित है, जहाँ दूर-दूर से श्रद्धालु आते हैं।

समय के साथ-साथ प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन होता रहता है यह प्राकृतिक नियम है। सूफ़ियों के विभिन्न सम्प्रदायों ने भारत में जिन रूपों में प्रवेश किया था, वे स्थिर न रह सके और भारतीय प्रभाव की स्पष्ट छाया उन पर दृष्टिगोचर होने लगी। भारतीय दर्शन, भारतीय धर्मों और भारतीय कर्मकाण्डों को भारतीय सूफ़ी सम्प्रदायों ने अपना लिया।

भारत में सूफ़ियों के कुछ सम्प्रदायों का विकास विशुद्ध भारतीय सैद्धांतिक और भारतीय व्यावहारिक धरातल पर हुआ। ऐसे अनेक सम्प्रदायों में से मदारी सम्प्रदाय और शहीदी सम्प्रदाय उल्लेखनीय हैं।

मदारी सम्प्रदाय

मदारी सम्प्रदाय के प्रवर्तक शाह मदार थे। इनका वास्तविक नाम बहाउद्दीन था। ये मदीना से भारत आये थे। भारत में आकर कानपुर के पास माकनपुर में इन्होंने अपना स्थाई ठिकाना बना लिया। यहीं इनका निधन हुआ। माकनपुर में अब भी बाबा मदार शाह की मज़ार है जहाँ प्रति वर्ष बड़ा भारी उर्स भरता है।

शाह मदार के अलौकिक व्यक्तित्व से संबंधित अनेक किंवदन्तियाँ जनसाधारण में प्रचलित हैं। मदारी सम्प्रदाय के अनुयायी सिर पर काला साफा बाँधते हैं, काला चोंगा धारण करते हैं और काला ही डण्डा धारण करते हैं। इस सम्प्रदाय के कुछ पहुँचे हुए फकीर नग्नावस्था में रहते हैं। ये इस्लाम धर्म के नमाज और रोजा के बंधनों को भी स्वीकार नहीं करते। मदारी सम्प्रदाय के साधु-दम- मदार-दम का उद्घोष ठीक इसी प्रकार करते रहते हैं, जिस प्रकार प्राचीन काल में हिन्दू योगी- अलख निरंजन का उद्घोष द्वार-द्वार पर करते थे। दम-मदार-दम का तात्पर्य है-मदार ही जीवन का सर्वस्व है, मदार ही जीवन का आधार है। पंजाब से होते हुए समूचे उत्तर भारत में आज भी एक गीत अत्यंत प्रचलित है और लोकप्रिय है: "दमादम मस्त कलंदर अली दां पहला नम्बर"।" ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दुओं के प्रार्थना गीतों की तर्ज पर रचित इस गीत

का संबंध क़लंदरी और मदारी दोनों सम्प्रदायों से है।

शहीदी सम्प्रदाय

सूफ़ियों का यह सम्प्रदाय विशुद्ध भारतीय है। यद्यपि इसे साम्प्रदायिक नहीं कह सकते क्योंकि इस सम्प्रदाय के न कोई स्थाई सिद्धांत हैं और न ही कोई इस सम्प्रदाय का प्रवर्तक। इस सम्प्रदाय के मूल में यदि कुछ है तो वह है-अन्याय- अत्याचार को समाप्त करने में अपने प्राणों की आहुति देने वाले शहीदों की शौर्य गाथाएँ, जिनमें यथार्थ कम, मिथकीय तत्त्वों का समावेश अधिक होता है। ऐसे शहीदों की मज़ारें देश-भर में फैली हुई हैं। डॉ. नरेश के अनुसार "चौदहवीं शताब्दी में बहराइच में शहीद गाज़ी मियाँ का मज़ार बना, जिसके श्रद्धालुओं में सम्राट मुहम्मद तुगलक भी सम्मिलित था। पंजाब में सुनाम के शेख बन्ना बनोई तथा शहजादा टिब्बा के शहज़ादा पीर ने भी शहीदी सूफी संतों के रूप में बड़ी ख्याति प्राप्त की तथा उनकी मज़ारों पर आज भी श्रद्धालु नतशिर होते हैं। इन मिथकीय सूफी संतों में कई संत ऐसे हैं, जिनका संबंध हज़रत मोहम्मद के साथ जोड़ दिया गया है। भटिण्डा के हाजी रतन तथा सोनीपत के मामूँ भानजा इसी कोटि में आते हैं।"10

प्रमुख सूफ़ी सम्प्रदायों की साधना पद्धतियाँ एवं सिद्धांत

सूफ़ियों की साधना-पद्धति पर एक ही वाक्य में प्रकाश डालना हो तो कहा जा सकता है कि-सूफ़ियों की साधना-पद्धति का आधार प्रेम है। इसी प्रेम की अभिव्यंजना विभिन्न रूपों और सिद्धांतों के द्वारा विभिन्न सूफ़ी सम्प्रदायों में हुई है। मंझन का संबंध शत्तारी सम्प्रदाय से था, अतः सर्वप्रथम इसी सम्प्रदाय के स्वरूप को संक्षिप्ततः समझना समीचीन होगा।

शत्तारी सम्प्रदाय

जिस प्रकार हिन्दुओं में श्रवण, कीर्तन, जप, पादसेवन आदि भक्ति के नौ प्रकार बताए गए हैं, उसी प्रकार शत्तारी सम्प्रदाय में दस नियमों का पालन अनिवार्य है। ये दस नियम इस प्रकार हैं:

1. पश्चाताप: साधक सांसारिक रूप को पहचान कर उन कृत्यों पर पश्चाताप करता है, जो उसने संसार में रहकर किये हैं।

2. विरक्ति भाव : साधक संसार के उस रूप से साक्षात्कार करता है, जो स्वार्थ से मंडित है, जिसमें दुःख ही दुःख है, तब

उसे संसार से विरक्ति होने लगती है।

3. एकान्तवास: संसार से आसक्ति समाप्त होने पर साधक में एकांतवास की वृत्ति जागृत होने लगती है और वह संसार तथा सांसारिकता से दूर होने लगता है।

4. ध्यान : एकांत प्राप्त होते ही उसकी चिवृत्तियाँ ऊर्ध्वमुखी होने लगती हैं और वह कामना रहित होकर ईश्वरीय ध्यान में लीन होने लगता है।

5. ईश्वरीय निष्ठा : ध्यान धारण करने से साधक का मन एकाग्र होने लगता है और तब वह अपनी संपूर्ण निष्ठा ईश्वर में लगा देता है।

6. कामनाओं का शमन: साधक की डोर जब ईश्वर से बँध जाती है, तब उसकी कामनाएँ अशेष हो जाती हैं। ईश्वर प्राप्ति के अतिरिक्त फिर उसकी कोई इच्छा शेष नहीं रहती।

7. संतोष: साधक को संसार से कोई मोह नहीं रह जाता। संतोष धारण करना उसका स्वभाव बन जाता है।

8. धैर्य: ईश्वर की प्राप्ति में, उसका प्रेम और अनुग्रह प्राप्त करने में साधक असीम धैर्य धारण करता है।

9. स्मरण : जब साधक सब प्रकार से कामनाओं से मुक्ति प्राप्त कर लेता है, तब उसके पास ईश-स्मरण के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं बचता।

10. पूर्ण समर्पण : उपर्युक्त स्थितियों को पार करता हुआ साधक अंततः अपने आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाता है, उसमें लय हो जाता है, उसमें एकाकार हो जाता है।

शत्तारी सम्प्रदाय में तीन प्रकार के साधक पाए जाते हैं: अखयार, अहरार और शत्तार। जिनकी वृत्ति धार्मिक होती है, वे अख्यार साधक कहलाते हैं। साधना करते-करते जिन साधकों की आत्मा निष्कलुष होकर पवित्र हो जाती है, वे अहरार कोटि के साधक होते हैं। साधनों को अंगीकार कर जो साधक शीघ्र ही अपने साध्य की ओर गति करते हैं, वे शत्तार साधक कहलाते हैं।

`विभिन्न विद्वानों के मतों को उद्‌धृत करते हुए डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय

लिखते हैं कि- "शत्तारी सम्प्रदाय में न तो नफ़स (वासना) का विरोध है और न मुजाहदा (तप, साधना, इन्द्रिय निग्रह) का और न इसमें फना या 'फनाउल फना' ही है। क्योंकि फना में दो व्यक्तित्व होते हैं। एक वह, जिसका 'फना' होता है और दूसरा वह, जिसमें फना होता है। यह 'तौहीद' के खिलाफ़ है। शत्तारी संत तौहीद को स्वीकार करते हैं और सभी सीढ़ियों पर तज्जलियात (अध्यात्म-ज्योति, नूरेहक) में जात (अस्तित्व) को सिफ़त (गुण) के साथ स्वीकार करते हैं। शत्तारी संत सच्चे दान देने वाले को मद्देनजर रख के जो कुछ मिलता है, खा लेते हैं और शिकायत नहीं करते। शत्तारियों के अनुसार अपनी जात, सिफ़त और अफ़आल (कृतियाँ) को खुदा की जान, सिफ़त और अफ़आल समझो और एक हो जाओ। दूसरे अहरार और अख्यार (Gnostics) का जो मुजाहदात (इंद्रिय निग्रह, तपस्या) और साधना करते हैं, यह तरीका नहीं है। दूसरे कहते हैं, अपने 'नफ़स' को 'फना' की भाँति समझो और खुदा को 'बक़ा' के रूप में। अपने नफ़स का अबूदीयात (नित्यता) और खुदा का रबूबीयत (स्वामित्व, ईश्वरत्व)। शत्तारी सम्प्रदाय का सिद्धांत 'अनलहक' के सूत्र का अन्य सिद्धांतों की अपेक्षा अधिक सख्ती से निर्वाह करता है।""

तात्पर्य यह है कि शत्तारी सम्प्रदाय में केवल एक ही ईश्वरीय सत्ता को मान्यता प्राप्त है। इस सम्प्रदाय में खुदा (ईश्वर) खल्क (सृष्टि, संसार), पैगंबर तथा बंदा सब एक हैं। इस सिद्धांत की पुष्टि करते हुए मंझन 'मधुमालती' में एक स्थल पर लिखते हैं कि-संसार सुन ले। ईश्वर का जो प्रकट रूप है, उसका नाम मोहम्मद है तथा जो गुप्त रूप है, उसे भी वही जानना चाहिए:

ऊँचे कहीं पुकारि कै जगत सुनै सभ कोइ।

परगट नाउं मुहम्मद गुपुत जो जानिय सोइ ।।

शत्तारी सम्प्रदाय का यह सिद्धांत हिन्दू धर्म के निर्गुण-सगुण के समन्वय से साम्य रखता है, जिसमें कहा गया है कि ईश्वर का गुप्त रूप निर्गुण है परन्तु विभिन्न अवतारों के द्वारा वही निर्गुण, सगुण रूप हो जाता है। तुलसी ने भी इसे 'सगुणहिं अगुणर्हि नहिं कछु भेदा' कहा है।

मंझन ने शत्तारी सम्प्रदाय के इस दर्शन को अपनी 'मधुमालती' में अनेक बार अनेक रूपों में व्यक्त किया है। एक स्थल पर वे कहते हैं कि वह एक ही है, दूसरा नहीं है। समूची सृष्टि का लय उसी में हो जाता है:

एक अहै दोसर कोइ नाहीं। तेहि सभ सिस्टि रूप मुख जाहीं।"

शत्तारी सम्प्रदाय में ध्यान और समाधि का विशेष महत्त्व है। मंझन ने भी इसके महत्त्व को रेखांकित किया है:

परिहरि सुद्धि बुद्धि औ ग्यानां ।
कया बेवरजित लावहिं ध्यानां ।
तौ समाधि लौ लागे जहाँ।
आपु पाव अपान तू तहाँ।
निरगुन जहाँ निरंजन सूनां ।
तहाँ आपु सों आपु बिहूनां ।
ग्यान पार जहवां अग्यानां ।
तहां आपु सेउं आपु अमानां ।
सहज समाधि लाउ तै तहाँ।
आपु सेउँ आप पाउ सुधि जहाँ।
सहज अलोले लाइले, निगम गोफ रह सूति।
जहाँ न तँ ओ कोऊ औ एकौ करतूति ।।"

भारतीय सूफ़ी सम्प्रदायों में कुछ ही सम्प्रदाय ऐसे हैं जिन पर भारतीयता का अत्यंत गहरा प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव का शोधपूर्ण आकलन करते हुए डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय विस्तार से लिखते हैं कि "भारत में शत्तारी सूफ़ियों का ही एक ऐसा सम्प्रदाय है, जिन्होंने योग तथा भारतीय साधना की कतिपय अन्य बातें अंगीकार कीं। भारतीय योगियों की भाँति शत्तारी साधक भी जंगलों में फल-फूल खाकर रहते थे और हठयोग की साधना करते थे। शत्तारियों ने ज़िक्र (खुदा के गुणों को जपना) पर बल दिया, जिसमें एकांत और पवित्रता का भाव रहता है। पहले कलिमा का जप शत्तारी करते थे; किन्तु अरबी, फ़ारसी और हिन्दी में भी जप किये जाते हैं। हठयोग में यौगिक आसन और समाधि पर उनका विशेष बल था। शत्तारी संत उल्मा की आलोचना से बचने के लिए अपनी साधना को गुप्त रखते थे।

चिश्ती सम्प्रदाय

चिश्ती सम्प्रदाय में ईश्वर के श्रवण-कीर्तन को प्रमुखता प्रदान की जाती है। यही कारण है कि अमीर खुसरो जैसे कवि और संगीतज्ञ ने संगीत तथा काव्य को अंगीकार किया। ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती और हज़रत निजामुद्दीन औलिया की दरगाहों पर प्रति वर्ष लगने वाले उर्स में संगीत की छटा आज भी बिखरती है।

इस सम्प्रदाय में आचरण की शुद्धता पर विशेष बल दिया जाता है, क्योंकि शुद्ध आचरण से ही आत्मा विशुद्ध बनती है। ख़्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती ने अपने

शिष्यों के लिए नौ नियम निर्धारित किये थे। चिश्ती सम्प्रदाय के अनुयायियों को इन नौ व्रतों का पालन कठोरता से करना अनिवार्य है :

1. अपरिग्रह का कठोरता से पालन किया जाए।

2. उधार लेने की प्रवृत्ति से बचा जाए।

3. भूखे रहना भले ही पड़े, फिर भी किसी से कुछ न माँगा जाए।

4. दिन भर में यदि आवश्यकता से अधिक संग्रह हो जाए, तब अधिक को निर्धनों में वितरित कर दिया जाए।

5. किसी प्राणी के अनिष्ट करने के भाव को भी अपने मन में न लाना। यहाँ तक कि शत्रु के लिए भी शुभ चिंतन करना।

6. सदैव सत्कर्म की ओर प्रवृत्त होना। ऐसे कृत कार्य के लिए मात्र अपने पीर को श्रेय देना।

7. दुष्कर्मों से सदैव दूर रहना। यदि भूलवश ऐसा दुष्कर्म हो भी गया हो तो उसके लिए स्वयं को दोषी ठहराना तथा भविष्य के लिए सचेत और सजग रहना।

8. समय के पल-पल का सदुपयोग करते हुए दिन में व्रत व अधिकाधिक मौन धारण का प्रयास करना तथा रात्रि में खुदा का चिंतन और ध्यान करना।

9. आवश्यकता के अनुरूप ही वाणी का उच्चारण करना अन्यथा अधिकांश समय मौन व्रत धारण करना।

उपर्युक्त दोनों सम्प्रदायों के अतिरिक्त प्रत्येक अन्य सूफ़ी सम्प्रदायों के अपने दर्शन हैं और अपने सिद्धांत हैं। परन्तु इस अर्थ में प्रत्येक सम्प्रदाय समरूप है कि साधन की शुचिता, आत्मशुद्धि, व्रत, जप-तप और गुरु के प्रति श्रद्धा आदि तथ्यों को सभी प्राथमिकता प्रदान करते हैं। नक्शबंदी सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिए जो ग्यारह नियम निर्धारित किये गये हैं, उनमें भी हृदय की शुचिता, दुष्कर्मों से दूर रहना, आत्म-विश्लेषण, मन को न भटकने देना, निरंतर ईश-जप और ईश-चिन्तन आदि साधनों का निर्धारण किया गया है।

सुहरावर्दी सम्प्रदाय के सिद्धांत कुरआन से साम्य रखते हैं। इस सम्प्रदाय में एकांतिक साधना पर बल दिया गया है; परन्तु यहाँ भी हृदय की पावनता, खुदा के अतिरिक्त अन्य किसी को सर्व समर्थ न समझना, सांसारिकता से ध्यान हटाकर ईश्वर की ओर उन्मुख होना, मानव के प्रति सदय एवं विनम्र होना आदि को प्राथमिकता दी गई है।

फ़िरदौसी सम्प्रदाय भी अपने अनुयायियों से दया, उदारता, दान, धैर्य तथा

समता जैसे आदर्श तत्त्वों को धारण करने की अपेक्षा करता है। लगभग यही नियम कलंदरी सम्प्रदाय में भी प्रचलित हैं। कलंदरी सम्प्रदाय के अनुयायी भी विनम्रता, अहं का त्याग, आत्मोत्सर्ग, ईश्वर का जप-तप, उसके प्रति समर्पण तथा सांसारिक पदार्थों से अनासक्ति जैसे आदर्शों के पालन का प्रयास करते हैं।

सूफ़ी कवियों ने, जो जिस सम्प्रदाय से सम्बद्ध था, उसके सिद्धांतों तथा दर्शन को प्रेम-कथाओं के माध्यम से व्यक्त किया है। भारतीय सूफी कवियों ने भारतीय प्रेम-कथाओं को चुना। फ़ारसी में शीरीं-खुसरो, वामिक-आजरा, यूसुफ-जुलेखा तथा सर्वाधिक ख्यात लैला-मजनूँ जैसे प्रेमाख्यान पूर्व से ही थे। इन प्रेमाख्यानों में लैला-मजनूँ का प्रेमाख्यान सूफियाना अर्थ में अपेक्षाकृत सर्वाधिक प्रौढ़ है, जिसमें हक़ीकी के इश्क के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम-प्राप्ति की सफल अभिव्यंजना की गई है।

भारतीय प्रेमाख्यानों को लेकर जो सूफ़ी-काव्य सृजित हुआ है, उसमें चन्दायन को (मुल्ला दाउद कृत) आदि ग्रंथ माना गया है, जिसका रचना काल सन् 1379 है। यद्यपि आचार्य रामचंद्र शुक्ल, कुतुबन कृत 'मृगावती' को सूफ़ी काव्य-परम्परा के आदि ग्रंथ होने का श्रेय प्रदान करते हैं। मृगावती का रचना काल सन् 1504 है। इस परम्परा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति मलिक मोहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत' (हिजरी 947) है। 'मधुमालती' (सन् 1545-मंझन) 'चित्रावली' (सन् 1619-उसमान) व ज्ञानदीप (सन् 1619-शेखनबी) भी उल्लेखनीय सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य हैं। इन काव्यों के अतिरिक्त जमाल पचीसी (जलालुद्दीन), रत्नावली (जान), अनुराग-बांसुरी (नूर-मोहम्मद), हंस जवाहर (कासिम शाह) आदि शताधिक प्रेमाख्यानों की रचना हुई जिनके द्वारा सूफ़ी कवियों ने अपने-अपने सम्प्रदाय के सिद्धांतों को परिपुष्ट किया।

संदर्भ

1. सूफ़ीमत और हिन्दी सूफ़ी काव्य डॉ. नरेश, पृ. 12

2. संस्कृति के चार अध्याय डॉ. रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 251

3. वही, पृ. 253

4. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय, पृ. 27

5. वही, पृ. 30

6. सूफ़ीमत और हिन्दी सूफ़ी काव्य डॉ. नरेश, पृ. 31

7. वही, पृ. 39

8. वही, पृ. 40

9. वही, पृ. 43

10. बही, पृ. 46

11. सूफी काव्य विमर्श डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय, पृ. 157

12. मधुमालती सं. माता प्रसाद गुप्त, छंद 8

13. वहीं, छंद 6

14. वही, छंद 33

15. सूफ़ी काव्य विमर्श डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय, पृ. 156

द्वितीय अध्याय

मंझन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

व्यक्तित्व

मध्यकालीन कवियों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने अपने कृतित्व में आस्था व्यक्त की। यही कारण है कि उनका व्यक्तित्व गौण-सा रहा। वे चाहे कबीर हों, तुलसी हों अथवा सूर लें। कतिपय कवि अवश्य ऐसे रहे हैं, जिन्होंने अपने व्यक्तित्व पर आंशिक अथवा पूर्ण रूप से प्रकाश डाला है। जहाँ जायसी ने अपने व्यक्तित्व के संबंध में अपनी कृतियों में पर्याप्त संकेत किये हैं, वहीं मंझन अपने विषय में प्रायः मौन धारण किये हुए हैं। मंझन के व्यक्तित्व पर अन्य ग्रंथों में तो इनकी जीवनी पर प्रकाश पड़ा है, किन्तु अपने ग्रंथ में इन्होंने अपने संबंध में कुछ भी स्पष्ट नहीं किया है।

मंझन की एकमात्र उपलब्ध यश-प्रदायक कृति है- 'मधुमालती' । 'मधुमालती' के रचना काल का स्पष्ट उल्लेख मंझिन ने किया है :

सन् नौ से बावन जब भये,

सती पुरुख कलि परिहरि गये।

तब हम जिय उपजी अभिलाखा,

कथा एक बाँधउं रस भाखा।

उक्त उद्धरण के अनुसार हिजरी सन् नौ सौ बावन में जब 'सतीपुरुख' परिहरि गये; तब उनके हृदय में यह अभिलाषा उत्पन्न हुई कि एक 'रसकथा' बाँधी जाये।

यहाँ 'सतीपुरुख' से तात्पर्य 'शेरशाह सूरी' से है। शेरशाह का निधन भी इसी समय अर्थात् हिजरी सन् 952 (सन् 1545) में हुआ था।' शेरशाह के पश्चात् इनका द्वितीय पुत्र जलाल खाँ दिल्ली की गद्दी पर बैठा। इसने इस्लामशाह नाम धारण किया। इसे इतिहास में सलीमशाह भी कहा गया है। तत्कालीन काव्य-रूढ़ियों का पालन करते हुए मंझन ने इसी सलीमशाह का गुणगान शाहेवक्त के रूप में इस

प्रकार किया है :

साहि सलेम जगत भा भारी। जेई पूंजी बर मेदिनि सारी।

जौरे कोंपि पैरी पाँ चापै। इंदर कर इंद्रासन कॉपै।

नौ खंड सात दीप सभ ठाऊँ। भएउ भरम अति क्रित गा नाऊं।

अंतरिख कर अस राज संमारा। जग महं कोइ न रहा जुझारा।

दस्टुं दिसा मानी जग संका। खरग झार भइ खरभरि लंका।

प्रिथिर्मी पति गुन गाहक दस औ चारि निधान।

पर भुअ गंजन सापुरुस गरुव गरिस्ट सुजान।।

उपर्युक्त छंद 10 से प्रारंभ हुआ शाहे वक्त सलीमशाह का गुणानुवाद छंद 13 तक अर्थात् कुल चार छंदों में पूर्ण हुआ है।

मंझन ने जब 'मधुमालती' का प्रणयन किया, उस समय दिल्ली के सिंहासन को इस्लामशाह सुशोभित कर रहा था; परन्तु यह अपने पिता शेरशाह के समान योग्य नहीं था। सन् 1539 ई. में चौसा के युद्ध में शेरशाह से पराजित हुमायूँ अपनी हार का बदला लेने के अवसर तलाश रहा था। हुमायूँ ने सन् 1555 में पुनः अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर लिया, किन्तु जनवरी 1556 में हुमायूँ का भी निधन हो गया और उसका पुत्र अकबर फरवरी 1556 में सिंहासनारूढ हुआ। नवम्बर 1556 में हुए पानीपत के द्वितीय युद्ध में अकबर केवल विजयी ही नहीं हुआ, अपितु इसकी अपार संभावनाओं के द्वार भी खुल गये।

मंझन के जीवन का प्रारंभिक सिरा शेरशाह सूरी के शासनकाल से सम्बद्ध है, तो अंतिम छोर पर अकबर का राजकाल स्थित है। इस दीर्घकाल की घटनाओं का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव निश्चित ही मंझन पर पड़ा होगा और उनकी 'मधुमालती' प्रभावित हुई होगी।

उपलब्ध प्रमाणों और जानकारियों के आधार पर मंझन के जीवन का जो चित्र उभरता है, उसके केनवास के किनारे बाबर-काल के उत्तरार्द्ध से आरंभ होते हैं और अकबर काल में समाप्त हो जाते हैं। डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय के ग्रंथ- 'सूफ़ी काव्य-विमर्श' के अनुसार मंझन का वास्तविक नाम मीर सैयद मंझन या मीर सैयद मंझन राजगिरि और इनके पिता का नाम अब्दुल्लाह् काजी खैरुद्दीन शरीफ था। मंझन के पूर्वज बल्ख से भारत आये थे, जिन्होंने गौड़ देश (आज का बंगाल) में अपना ठिकाना बनाया था। बंगाल के जिस नगर में ये आकर बसे थे, उसी लखनौती नगर में मंझन का जन्म हुआ था। अब्दुल्लाह् काजी खैरुद्दीन शरीफ की पत्नी दिल्ली के प्रतिष्ठित काजी समाउद्दीन की बेटी थी।'

सूफ़ियों का भारत में शत्तारी सम्प्रदाय अत्यंत प्रसिद्ध है। इसी सम्प्रदाय में शेख मोहम्मद ग़ौस विख्यात सूफी संत हुए हैं। सैयद ताजुद्दीन बुखारी भ्रमण करते हुए भारत आए और इन्हीं शेख मोहम्मद गौस के शिष्य बन गये। मंझन की भेंट ताजुद्दीन बुखारी से हुई और ताजुद्दीन बुखारी के अनुरोध पर शेख मोहम्मद गौस ने मंझन को अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया। मोहम्मद ग़ौस का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि बाबर जैसे शक्तिशाली सम्राट् की भी उन पर अगाध श्रद्धा थी। शेख मोहम्मद गौस के आदेश से बाबर ने हुमायूँ को अपना उत्तराधिकारी बनाया। इस घटनाक्रम के पश्चात् हुमायूँ भी शेख मोहम्मद गौस को अपना सबसे बड़ा शुभचिंतक समझने लगा। संत शेख मोहम्मद ग़ौस लगभग बारह वर्षों तक चुनारगढ़ के क्षेत्र में रहे। मंझन भी अपने गुरु के साथ चुनारगढ़ में रहे और यहीं उनकी 'मधुमालती' के लेखन की नींव पड़ी। मंझन ने मधुमालती के प्रारंभिक 43 छंदों में से चौदहवें से लेकर इक्कीसवें छंद तक अपने गुरु शेख मोहम्मद गौस का अत्यंत श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है।

चौतीसवें और पैंतीसवें दो छंदों में जिस चरनाढ़ नगर का वर्णन कवि ने किया है, यह चरनाढ़ नगर चुनारगढ़ ही है। यह वही चुनारगढ़ है, जो वर्तमान उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले के अंतर्गत है और जो विख्यात ऐयारी उपन्यासकार बाबू देवकीनंदन खत्री के ऐयारी उपन्यासों 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति' तथा 'भूतनाथ' आदि का विख्यात क्रीड़ास्थल रहा है। चुनारगढ़ के समीप ही चौसा है, जहाँ के युद्ध में शेरशाह ने हुमायूँ को पराजित किया था और चुनारगढ़ पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था। परन्तु शीघ्र ही हुमायूँ ने भी पुनः चुनारगढ़ पर अधिकार कर लिया था। मंझन ने चुनारगढ़ का चर्नाढ़ी के रूप में जो वर्णन किया है, वह इस प्रकार है:

गढ़ अनूप बसि नगरि चर्नाढी ।

कलिजुग महं लंका सों गाढी।

पुरुब दिसा जरगी फिरि आई।

उतर पछिम गंग गढ़ खाई।

देखे बने जाइ नहिं कही।

गढ़ भीतर गंगा चलि बही।

साहि सहस जी लागहिं आई।

जाहि हारि सिर ठेंगा खाई।

ऊपर छाजा अनबन भाँती।

हेठ बही सुरसरि सरसाती।

नगरि अनूप सोहावनि औ गढ़ बिखम अगंम।
बरबस हाथ न आवै बिनु जस पुब्ब करंम ।।
गढ़ सुहाव गढ़पति सुर ग्यानी।
नगर लोक सभ सुखी नियानी।
सभ सुर हरी भगत औ ग्यानी।
आनन्दी पर दुखी बिनानी।
दाता औ दयाल धरमिस्टा।
समै पेम रस लीन गरिस्टा।
भागिवंत भोगी सभ लोगा।
औ सभ कहं कुलवंत संजोगा।
मोहि अस्तुति मुँह कही न जाई।
जातु सरग भुई छावा आई।
खोरि खोरि सभ घर घर नगर अनंद हुलास ।
कलिजुग महं जस प्रिथिमीं उतरि बसी कविलास ।।'

उपर्युक्त अंतःसाक्ष्य यह सिद्ध करते हैं कि मंझन चुनारगढ़ में रहे थे और इन्होंने प्रसिद्ध संत शेख मोहम्मद गौस को अपना गुरु बनाया था। शेख ग़ौस का संबंध सूफ़ियों के शत्तारी सम्प्रदाय से था। "सोलहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में शेख फूल तथा उनके छोटे भाई शेख मोहम्मद गौस बहुत प्रसिद्ध शत्तारी सूफी संत हुए हैं। शेख ग़ौस के पुत्र शेख बुध अब्दुल्ला यद्यपि लगभग चालीस वर्ष अकबर की सेना में रहे, लेकिन उनकी साधना निरंतर चलती रही। जहाँगीर के सिंहासनारूढ़ होने पर वे ग्वालियर चले गये और उन्होंने अपने पिता शेख ग़ौस के मकबरे के निकट अपनी खानक़ाह स्थापित कर ली।"" ग्वालियर में मंझन के गुरु मोहम्मद गौस का मकबरा अब भी बना हुआ है।

सूफ़ी दर्शन क्या; मध्यकाल के समूचे भक्ति काव्य में गुरु को असाधारण महत्त्व प्रदान किया गया है। फिर चाहे वह निर्गुण संतों की वाणी हो अथवा सगुण की साकार झाँकी। जायसी, मुल्ला दाऊद आदि प्रेममार्गी कवियों की भाँति मंझन ने भी अपने गुरु शेख मोहम्मद गौस को सश्रद्धा स्मरण किया है। वे कहते हैं:

सेख बड़े जग विधि पियारा।

ग्यान गरुअ औ रूप अपारा।

संवरि नाउं परसे जौ आवै।

ग्यान लाभ होइ पाप गंवावै।

जाकहं मया जीउ सेंउ करहीं।
सहज बोलाइ ताज सिर धरहीं।
जा कहं दिस्टि करहिं प्रतिपारहिं।
कया कलंक धोइ जग डारहिं।
बूझि गुरु सिख दिस्टि प्रतिपाला।
सो आपन जम धोइ निकाला।
गुरु दरसन दुख धोवन धनि धनि दिस्टि जो भाउ।
जो गुरु सिक्ख दिस्टि प्रतिपालै सो चारिहुं जुग राउ ।।
सेख मुहम्मद पीरु अपारा।
सात समुंद नाउ कंडहारा।
संवरि पांउ जौ आवै कोई।
परथम मुख देखत सुख होई।
फुनि दुहुं जग पूजे मन आसा ।
परसत चरन पाप गा नासा।
ग्यान छांड़ि मुख और न बाता।
दस औ चारि मंत सिधि दाता ।
विसमौ हरख न घट महिं लाहैं।
संतत रहहिं लीन लौ माहें।
दाता औ गुन गाहक गौस मुहम्मद पीर।
दुहुं कुल निरमल सापुरुस गरुअ गरिस्ट गंभीर ।।

अर्थात्, संसार में बड़े शेख (शेख ग़ौस मोहम्मद) ऐसे थे, जिनसे ईश्वर बहुत प्यार करता था। वे अत्यंत गुणवान थे और उनका रूप अत्यंत सुंदर था। उनके पास आने से अथवा उनकी शरण में आने से लोगों को ज्ञान प्राप्त होता था और उनके पाप दूर हो जाते थे। वे जिस पर प्रसन्न होते, उससे अत्यंत प्रेम करते और दया करके उसे सम्राट तक बना देते। जिस पर उनकी दया-दृष्टि पड़ती, उसका पालन स्वयं करते और उसकी काया के सारे विकारों को दूर कर देते।

मंझन कहते हैं कि गुरु के दर्शन मात्र से सारे दुख दूर हो जाते हैं, इसीलिए वह मनुष्य धन्य है, जिनके हृदय में गुरु-दर्शन की अभिलाषा जागृत होती है। जो व्यक्ति ऐसा सद्भाव धारण करता है, वह चारों युगों में राजा होता है।

मंझन अपने गुरु की महिमा का गुणगान करते हुए कहते हैं कि हमारे पीर साहब (शेख मोहम्मद गौस) में अपार शक्ति थी। सातों समुद्रों को पार करने में वे

नौका के समान थे। उन्हें स्मरण करता हुआ जो भी उनकी सेवा में आता, तो गुरुमुख के दर्शन मात्र से ही उस व्यक्ति को सुख प्राप्त होता। हमारे पीर साहब की सेवा में आने से व्यक्ति को लोक-परलोक की समस्त वांछनाएँ पूर्ण होतीं हैं और यदि व्यक्ति ने उनके चरणों का स्पर्श ही कर लिया, तब तो उसके पाप ही नष्ट हो गये। ज्ञान-वार्ता के अतिरिक्त उनके मुख से दूसरी कोई बात नहीं निकलती। वे चौदह विद्याओं और तंत्र-मंत्र विद्या को प्रदान करने वाले हैं। उनके हृदय में हर्ष-विषाद-विस्मायादि कुछ भी नहीं रहता। वे सतत् ईश्वर के ध्यान में लीन रहते हैं।

हमारे गुरु (पीर) शेख ग्रीस मोहम्मद अत्यंत दानी हैं। वे गुणों के पारखी हैं। लोक-परलोक दोनों कुलों में वे ही ऐसे हैं, जो पावन हैं, सच्चे पुरुष हैं, सद्‌गुरु हैं और गंभीर हैं।

डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय ने अपने गवेषणात्मक आलेख में मंझन की जीवनी पर मौलिक प्रकाश डाला है। वे गौसी शत्तारी की पुस्तक 'गुलज़ारे अबरार' को उद्‌धृत करते हुए लिखते हैं कि- "जिस वर्ष शेरखाँ सूर ने रायसेन के किले को विजय करके उसका नाम इस्लामाबाद रखा तो वे वहाँ 'शेखुल इस्लाम' रहे और वहीं अपनी एक खानकाह स्थापित की। जब रायसेन पर दुष्ट काफिरों का अधिकार हो गया, तो वे वहाँ से सारंगपुर (मालवा) चले गये। मंझन का संबंध शेरशाह के पुत्र और उत्तराधिकारी इस्लामशाह से भी रहा। जहाँगीर काल के एक इतिहासकार मोहम्मद कबीर ने 'अफसाना-ए-बादशाहान' में यह सूचना दी है इस्लामशाह के साथ धर्माचार्य (उलमा), विद्वान (फुजतः) और कवि (शुअरा) रहा करते थे। उनमें मधुमालती के रचयिता मीर सैयद मंझन, शाह मोहम्मद फरमूली, उनके छोटे भाई मूसन और सूरदास प्रभृति विद्वान रहा करते थे और उनमेंअरबी-फ़ारसी और हिन्दवी की कविताएँ पढ़ी जाती थीं। अफसाना-ए-बादशाहान" में अनेक प्रसंगों में मंझन को मीर सैयद मंझन राजगिरि कहा गया है। हो सकता है, राजगिरी का अर्थ 'राजगृह का' हो।""

डॉ. पाण्डेय ने उपर्युक्त संदर्भ डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त द्वारा सम्पादित और विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित (सन् 1967) कुतुबन कृत मिरगावती के पृष्ठ संख्या 39-40 के आधार पर दी है।

मालवा के जिस सारंगपुर का संबंध मंझन और इनके पीर (गुरु) शेख ग़ौस मोहम्मद से है, वह मध्यप्रदेश के राजगढ़ जिले का वर्तमान में तहसील मुख्यालय है। माण्डू के संगीत-प्रेमी सुल्तान बाजबहादुर की संगीत-प्रेमी प्रेयसी रानी रूपमती इसी सारंगपुर की थी। रानी रूपमती और बाजबहादुर का प्रेमाख्यान इतिहास-सम्मत और इतिहास-प्रसिद्ध है। अकबर के आक्रमण में बाजबहादुर मारा गया था और जिस

रानी रूपमती को प्राप्त करने के लिए यह आक्रमण हुआ था, वह अपने प्रेम पर न्योछावर हो गई थी। सारंगपुर में आज भी रानी रूपमती की कब्र बनी हुई है, जो उपेक्षित है। यह अद्भुत संयोग है कि 'मधुमालती' के अमर प्रेम-गायक मंझन का निधन भी इसी सारंगपुर में हुआ।

मंझन पहले कुछ दिनों आष्टा (मालवा) में रहे और कुछ दिनों पश्चात् सारंगपुर आ गये। यहीं पर 80 वर्ष की अवस्था में हिजरी सन् 1001 (जनवरी, 1593) में मंझन ने संसार से विदा ली।

कृतित्व

मधुमालती का रचना स्थल

श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ने भी अपने ग्रंथ 'ग्वालियर के तोमर' में मंझन की जीवनी पर प्रकाश डाला है। डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय द्वारा प्रस्तुत मंझन की जीवनी और डॉ. द्विवेदी द्वारा प्रस्तुत मंझन की जीवनी में प्रायः साम्य है, क्योंकि दोनों विद्वान लेखकों ने ग़ौसी शत्तारी कृत 'गुलजारे अबरार' नामक कृति को मंझन की जीवनी का आधार बनाया है। श्री द्विवेदी के अनुसार मंझन ने अकबर से भी भेंट की थी। 'गुलजारे-अबरार' के उल्लेख से यह भी ज्ञात होता है कि मंझन ने अन्य ग्रंथों का भी प्रणयन किया था। श्री द्विवेदी लिखते हैं कि "जब अकबर सारंगपुर में था, तभी शाह मंझन, अन्य सूफी संतों के साथ बादशाह से मिलने गये थे। आजीवन अफगानों के प्रश्रय में रहने वाले शाह मंझन की स्थिति दयनीय होगी। उस समय ही शाह मंझन को शेख मोहम्मद गौस के आशीर्वाद की परमावश्यकता हुई होगी।

"ग़ौसी शत्तारी ने लिखा है कि-शाह मंझन ने अपने खोए ग्रंथों को सारंगपुर में अपने शिष्यों से पुनः लिखवाया था। संभवतः मधुमालती का नवीन पाठ भी इसी समय लिखा गया होगा। यही कारण है कि उसमें इस्लामशाह का भी उल्लेख है, खिजखाँ का भी और शेख मोहम्मद गौस का भी। अफगानों के परम शत्रु शेख ग़ौस मोहम्मद की स्तुति मंझन इसके पूर्व अपनी रचना में नहीं कर सकते थे।"

मंझन के एक पुत्र भी था जिसका नाम शेख उसमान था। श्री द्विवेदी के अनुसार, उसमान सारंगपुर में ही रहते थे। ग़ौसी शत्तारी सन् 1605 में उसमान से मिला था। शेख उसमान उस खिरके को उस समय तक बड़े यत्न से अपने पास रखे हुए थे, जो शेख मोहम्मद गौस ने शाह मंझन को प्रदान किया था।

मंझन के जीवन-वृत्त की प्रामाणिक गवेषणा करने वाले डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय ने 'मधुमालती' के प्रणयन स्थल के रूप में चुनारगढ़ की संभावना व्यक्त की

है। वे लिखते हैं- "मंझन चुनार में रहे थे। मधुमालती की रचना उन्होंने 952 हिजरी में की थी। इसके पूर्व ही मंझन शेख मोहम्मद गौस के संपर्क में आए होंगे। हिजरी सन् 970 में शेख मोहम्मद गौस आगरे में मरे थे। यह उल्लेख बदायूंनी ने किया है, अर्थात् सन् 1563 में उनका देहांत हुआ। मंझन ने 1545 ई. में 'मधुमालती' लिखी। इस प्रकार मधुमालती की रचना के 18 वर्ष पश्चात् गौस की मृत्यु का समय ठहरता है।

मोहम्मद गौस 929 हिजरी में चुनार छोड़कर ग्वालियर गए थे। मंझन इसके पूर्व चुनार में उनके संपर्क में आए होंगे। मधुमालती की रचना 952 हिजरी में हुई। अतः लगता है कि 'मधुमालती' की रचना के लगभग 23 वर्ष पूर्व वह चुनार में शेख मोहम्मद गौस के संपर्क में आए होंगे। मंझन की मृत्यु 1001 हिजरी (पुस्तक में 1001 ई. का उल्लेख है, जो त्रुटिपूर्ण है) में हुई थी। अतः उन्होंने 49 वर्ष की उम्र में 'मधुमालती' की रचना की, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। 26 वर्ष या उसके पूर्व की आयु वे वह मोहम्मद गौस के संपर्क में आ गए होंगे और यह असंभव नहीं कि मोहम्मद गौस के चुनार छोड़ने के बाद भी वे वहाँ रहे हों और 952 हिजरी में वहीं अपनी कृति पूर्ण की हो। चुनार के विस्तृत वर्णन के संदर्भ में यह असंगत नहीं कहा जा सकता। 'गुलजारे अबरार' से यह पता चलता है कि मोहम्मद गौस की कृति - 'जवाहिर ख़म्सा' का अध्ययन उनकी देख-रेख में उन्होंने किया और उसी पर अपने जीवन को आधारित किया।

929 हिजरी से 947 हिजरी तक मोहम्मद गौस ग्वालियर रहे। यदि मंझन इस बीच उनके संपर्क में ग्वालियर रहकर फिर चुनार चले गये हों और वहाँ 952 हिजरी में 'मधुमालती' की रचना की हो, तो यह भी असंभव नहीं है। इसमें संदेह नहीं है कि मंझन का चर्नादी का चित्रण चुनार का चित्रण है।"

इस विवेचना से यही ध्वनित होता है कि 'मधुमालती' का प्रणयन चुनार में किया गया था। परन्तु श्री हरिहर निवास द्विवेदी की मान्यता है कि 'मधुमालती' का लेखन मंझन ने रायसेन में प्रारंभ किया था। श्री द्विवेदी जी के अनुसार "इस्लाम शाह ने पहला काम यह किया कि कालिंजर के राजा कीर्तिसिंह और इसके 70 प्रमुख अनुयायियों को मृत्यु के घाट उतार दिया। उसके उपरांत वह आगरा आया। उसने शेरशाह के समय के सरदारों का दमन प्रारंभ कर दिया। उसी प्रसंग में उसने शुजात खाँ को मालवा का प्रशासक बना दिया। शुजात खाँ रायसेन और सारंगपुर को केंद्र बनाकर मालवे का प्रशासन देखने लगा। इसी समय मंझन ने रायसेन में मधुमालती लिखना प्रारंभ की :

सन् नी से बावन जब भये, सती पुरुख कलि परिहरि गये।
तब हम जिय उपजी अभिलाखा। कचा एक बाँधहुँ रस भाखा।।

"22 मई सन् 1545 को शेरशाह की मृत्यु हुई थी, अर्थात् सती पुरुष (शेरशाह) 'कलि परिहरि गये- 'इस पृथ्वी को छोड़ गये थे, तभी रायसेन के शेखुल-इस्लाम, शाह मंझन के मन में यह अभिलाषा जागृत हुई थी कि वे इस 'रसभाषा' में एक कथा लिखें अथवा भाखा में रसकथा लिखें। वह पूरी कब हुई, यह मंझन ने नहीं लिखा है।"10

इस प्रकार 'मधुमालती' के प्रणयन-स्थल के संबंध में दोनों विद्वानों में स्पष्ट मतभेद दृष्टिगोचर होते हैं। यह पृथक् शोध का विषय हो सकता है कि 'मधुमालती' का प्रणयन किस स्थान पर हुआ। चुनारगढ़, रायसेन, आष्टा, सारंगपुर अथवा इन सभी स्थानों पर ?

मंझन और जायसी के कृतित्व की मौलिकता

हिन्दी साहित्य को महान सूफ़ी काव्य ग्रंथ 'मधुमालती' देने वाले शेख मंझन को सारंगपुर के हिन्दी प्रेमी भुला बैठे। सारंगपुर में मंझन का एक मकबरा था, जिसे लोग भूलवश बाजबहादुर का मकबरा समझते रहे, जबकि बाजबहादुर का मकबरा माण्डू में स्थित है। मंझन ने जायसी की भाँति कभी जगत् में यश की कामना नहीं की। जायसी अपनी अभिलाषा स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हुए कहते हैं:

औ मैं जानि गीत अस कीन्हा।
मकु यह रहे जगत महँ चीन्हा।।
कहाँ सो रतनसेन अब राजा।
कहाँ सुआ अस युधि उपराजा ।।
कहाँ अलाउद्दीन सुलतानू ?
कहँ राघव जेइ कीन्ह बखानू
कहाँ सुरूप पद्मावति रानी ?
कोइ न रहा जग रही कहानी।
धनि सोई जस कीरति जासू।
फूल मरे, पै मरे न. वासू ।
केइ न जगत जस बेंचा, केइ न लीन्ह जस मोल?
जो यह पढ़े कहानी, हम्ह सँवरे दुइ बोल।।"

परन्तु मंझन ने 'मधुमालती' में अपने यश की और 'हमें स्मरण रखने की'-

(हम सैवरै दुइ बोल) कोई कामना नहीं की। इसके स्थान पर मंझन ने प्रेम के अमरत्व की बात कही है :

अमर न होत कोइ जग हार।
मरि जो मरे तेहि मींचु न मारे ।।
पेम के आगि सही जेई आंचा।
सो जग जनमि काल सेउं बांचा ।।
पेम सरनि जेइं आपु उबारा।
सो न मरे काहू कर मारा।।
एक बार जो मरि जीउ पावे।
काल बहुरि तेहि नियर न आवै ।।
मिरितु क फल अंनित होइ गया।
निहचे अंमर ताहि के कया।।
जी जिउ जानहि काल भी पेम सरन करि नेम।
फीटै दुहुं जग काल भी सरन साल जग पेम।।"

'मधुमालती' की रचना 'पद्मावत' के पश्चात् हुई थी। स्पष्ट है, अपनी पूर्ववर्ती परम्परा को कवि ने ग्रहण किया होगा। परन्तु मंझन ने यहाँ अत्यंत मौलिकता प्रदर्शित की है। जायसी ने अपने ग्रंथों में यत्र-तत्र न्यून ही सही; अपने संबंध में कुछ कहा तो है, परन्तु मंझन ने इस परम्परा का त्याग करते हुए अपने संबंध में कुछ नहीं कहा। जायसी ने अपने जीवन वृत्त पर पूर्ण नहीं, तो आंशिक प्रकाश अवश्य डाला है। अपने जन्म को उन्होंने स्पष्ट इंगित किया है। इतना ही नहीं, अपने निवास के संबंध में भी उनका संकेत स्पष्ट है :

भा औतार मोर नौ सदी।
तीस बरिस ऊपर कबि बदी ।।
आवत उदत चार विधि ठाना।
भा भूकंप जगत अकुलाना ।।
धरती दीन्ह चक्र बिधि लाई।
फिरे अकास रहेंट की नाई।।"

हिजरी सन् 900 में इनका जन्म हुआ। जन्म के समय प्रलयंकारी भूकम्प आया था, जिससे समूचा विश्व आकुल हो उठा था। नौ सदी के 'तीस बरिस ऊपर' अर्थात् हिजरी सन् 930 तक ये कविता करने लगे थे। अपने निवास-स्थान-जायस के संबंध में वे लिखते हैं:

जायस नगर मोर अस्थानू।
नगर क गाँव आदि उदयानू।।
तहाँ दिवस दस पहुने आयउँ।
भा वैराग बहुत सुख पायउँ।।"

पद्मावत में भी उन्होंने जायस नगर को अपना वासस्थान बताया है :

जायस नगर धरम अस्थानू।
तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।।"

इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी शारीरिक वक्रता को भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया :

एक नयन कवि मुहमद गुनी।
सोइ वियोहा जेहि कवि सुनी।"

सूफ़ी काव्य धारा में प्रेम की पीर के अमर गायक दोनों कवि हैं। परन्तु मंझन की अपने पूर्ववर्ती कवि जायसी से काव्यात्मक मौलिकता यही है कि उन्होंने जायसी की भाँति अपने व्यक्तित्व को उभारा नहीं। इस दृष्टि से मंझन जायसी की अपेक्षा अधिक निस्पृह प्रतीत होते हैं। जहाँ जायसी के पद्मावत का समापन यश- कामना सूचक शब्दावली- 'हम सेंवरे दोइ बोल' से होता है, वहीं मंझन की 'मधुमालती' प्रेम की यश पताका फहराते हुए इस उद्घोषणा के साथ समाप्त होती है कि जहाँ अमृत शोभित होता है, वह स्थल केवल प्रेम की शरण स्थली है। जब तक काव्य रूपी कलेवर का अस्तित्व है, तब तक संसार में प्रेम करने वालों का भी नाम अमर है:

औ अंव्रित जहँ छाजै, असो सुभर सो ठाउं।
कविता गात जवहिं लहि, रहइ जगत मंह नाउं।।"

संदर्भ

1. मंझन: सियाराम तिवारी, पृ. 13
2. मधुमालती सं. माताप्रसाद गुप्त, छंद 10
3. सूफी काव्य विमर्श: डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय, पृ. 115
4. मधुमालती सं. माताप्रसाद गुप्त, छंद 34-35
5. सूफ़ीमत और हिन्दी सूफी-काव्य डॉ. नरेश, पृ. 40
6. मधुमालती: सं. नाताप्रसाद गुप्त, छंद 14-15
7. सूफी काव्य विमर्श : डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय, पृ. 114
8. तोमरों का इतिहास (द्वितीय भाग) हरिहर निवास द्विवेदी, पृ. 240
9. सूझी काव्य विमर्श: डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय, पृ. 127
10. तोमरों का इतिहास (द्वितीय भाग) हरिहर निवास द्विवेदी, पृ. 238

11. जायसी ग्रंथावली: सं. रामचंद्र शुक्ल, छंद 2

12. मधुमालती सं. माताप्रसाद गुप्त, छंद 538

13. जायसी ग्रंथावली: सं. रामचंद्र शुक्ल, पृ. 304

14. वही, पृ. 306

15. वही, पृ. 7

16. वही, पृ. 7

17. मधुमालती सं. माताप्रसाद गुप्त, छंद 589

तृतीय अध्याय

मधुमालती : सामान्य परिचय

कृति-परिचय

मधुमालती की वर्तमान में चार हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। प्रथम प्रति रामपुर के नवाब साहब के विशाल और प्राचीनतम पुस्तकालय में सुरक्षित है। इस प्रति की लिपि फारसी है और इस पर प्रतिलिपि का समय 1132 हिजरी अंकित है। इस प्राचीन धरोहर की एक प्रति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के भारत कला भवन में है। इसकी माइक्रोफिल्म राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली में रखी गई है।

वाराणसी के ही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भारत कला भवन में 'मधुमालती' की दूसरी प्रति उपलब्ध है। यह प्रति भी फारसी लिपि में है; परन्तु यह प्रारंभ में, मध्य में और अंत में बहुत अधिक कटी-फटी है।

इस ग्रंथ की एक और प्रति भी भारत कला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में है जिसका प्रतिलिपि काल वि. संवत् 1644 है। यह प्रति भी स्थान-स्थान से अत्यंत कटी-फटी है। इस प्रति के प्रतिलिपिकार माधोदास हैं। माधोदास की इस प्रति की एक और प्रतिलिपि संवत् 1999 में की गई थी। यह प्रतिलिपि भी यहाँ सुरक्षित रखी हुई है।

उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के एकडला नामक स्थान से इस श्रृंखला की चौथी प्रति उपलब्ध हुई है। यह प्रति भी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के भारत कला भवन में सुरक्षित है। इस प्रकार 'मधुमालती' की चार प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हैं। इन्हीं के आधार पर 'मधुमालती' के वर्तमान रूप को सम्पादित किया गया है।

आज 'मधुमालती' के सर्वांग सौंदर्य को उद्घाटित करने वाले अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं। परन्तु इसे प्रकाश में लाने का श्रेय डॉ. शिवगोपाल मिश्र और डॉ. माता प्रसाद गुप्त को है। डॉ. मिश्र का कार्य यद्यपि एकांगी है। डॉ. मिश्र ने मधुमालती का जो सम्पादन किया है, उसका आधार केवल 'मधुमालती' की एकडला

वाली प्रति है। डॉ. मिश्र द्वारा सम्पादित प्रति का प्रकाशन हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी से हुआ है।

'मधुमालती' के सम्पादन का सर्वाधिक प्रामाणिक कार्य किया है-डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने। डॉ. गुप्त ने मधुमालती की उपलब्ध चारों पाण्डुलिपियों का गहन अध्ययन और शोध कर 'मंझन कृत मधुमालती' शीर्षक से जो प्रामाणिक ग्रंथ तैयार किया, वह सन् 1961 में मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुआ। स्वयं डॉ. गुप्त के शब्दों में डॉ. शिवगोपाल मिश्र ने रचना की एकडला (जिला फतेहपुर) में प्राप्त एक प्रति के पाठ को परिश्रमपूर्वक संपादित कर प्रकाशित किया। एक ही प्रति का होने तथा अन्य कारणों से भी रचना का यह पाठ संतोषजनक नहीं ज्ञात हुआ, इसीलिए मैंने फिर भी इस सुंदर कृति के एक संपादित संस्करण की आवश्यकता समझी और समस्त प्राप्त प्रतियों की सहायता से यह कार्य किया।""

कथावस्तु

'मधुमालती', जायसी के 'पद्मावत' से कथानक की दृष्टि से सर्वथा भिन्न है। पद्मावत जहाँ एक ही कथानक को लेकर सृजित है, वहीं मधुमालती में दो प्रेम कहानियाँ समानान्तर चलती हैं-मधुमालती-मनोहर की तथा पेमां-ताराचंद की। ग्रंथ नायिका है और नायिका के नाम पर ही ग्रंथ का नामकरण 'मधुमालती' हुआ है। कथा का फल भी नायिका को प्राप्त होता है, यद्यपि ग्रंथ की सहनायिका पेमां को भी फल की प्राप्ति होती है, वह नायिका के सर्वगुणों से सम्पन्न है, फिर भी कृति की नायिका नहीं है। इस ग्रंथ को दो नायक-दो नायिकाओं वाला अद्भुत व एकमात्र ग्रंथ की संज्ञा से विभूषित करना अधिक उपयुक्त होगा। मधुमालती की कथावस्तु निम्नानुसार है :

1. मनोहर का जन्म : अत्यंत प्राचीन समय में कनैगिरि (कनकगढ़) नामक सुंदर नगर में राजा सूरजभान का राज था। राजा निःसंतान था, इसीलिए अपार समृद्धि और राज्य का विस्तार होने पर भी वह दुखी रहता था।

एक दिन एक तपस्वी कहीं से विचरण करते हुए उसके राज्य में आ पहुँचा और नगर के समीप ही उसने अपना डेरा जमा लिया। उसकी प्रसिद्धि सुनकर नगर के लोग उसके दर्शन करने की इच्छा से उसके पास गये। राजा ने जब किसी तपस्वी के आने की बात सुनी, तब वह भी साधु के दर्शन करने गया। नगर के लोग तो दर्शनों के पश्चात् वापस अपने-अपने घरों को लौट गये; परन्तु राजा सूरजभान अपने महल में वापस नहीं आया। राजा पूरी श्रद्धा और संपूर्ण समर्पण के साथ तपस्वी की सेवा करता रहा। इस प्रकार बारह वर्ष का समय व्यतीत हो गया।

बारह वर्ष पश्चात् तपस्वी की समाधि जब भंग हुई, तब उसने राजा को अपनी सेवा में रत पाया। तपस्वी बहुत प्रसन्न हुआ। उसने राजा से वर माँगने को कहा। राजा ने अपनी संतान हीनता की व्यथा तपस्वी को सुनाई, तो तपस्वी ने राजा को एक पिंड दिया और कहा कि उसे ले जाकर वह अपनी सर्वाधिक प्रिय रानी को खिला दे तो उसे अवश्य संतान लाभ होगा। राजा हर्षित होकर वहाँ से चला। महल में आकर उसने अपनी सर्वाधिक प्रिय रानी कमलावती को तपस्वी द्वारा दिया हुआ पिंड खिला दिया।

दसवें माह में रानी कमलावती ने अत्यंत सुंदर पुत्र को जन्म दिया। राजा की खुशी का ठिकाना न रहा। समूचे राज्य में भी हर्ष का वातावरण छा गया। गुणी पंडितों को बुलाया गया। पंडितों ने नवजात शिशु का अत्यंत सोच-समझकर नामकरण किया-'मनोहर'। पंडितों ने मनोहर की जन्म कुण्डली बड़े मनोयोग से तैयार की। उन्होंने ग्रह-नक्षत्रादि विचारकर भविष्यवाणी की कि हे राजा! आपका पुत्र सभी लक्षणों से युक्त और अत्यंत प्रतापी होगा। इस बालक की अवस्था जब चौदह वर्ष और ग्यारह मास की होगी, तब इसे इसका प्रेमपात्र मिलेगा। अपने प्रेमपात्र की प्राप्ति के लिए यह वियोगी बनकर एक वर्ष के लिए इधर-उधर भटकता फिरेगा।

राजकुमार ने पाँचवें वर्ष में जब प्रवेश किया तब उसे विद्याध्ययन कराया गया। बारह वर्ष तक आते-आते वह समस्त विद्याओं में दक्ष हो गया। राजा ने अपनी वृद्धावस्था और चौथापन विचार कर मनोहर का राजतिलक कर दिया।

2. मनोहर की मधुमालती से प्रथम भेंट: मनोहर की अवस्था अब चौदह वर्ष और ग्यारह माह की हो चली थी। इसी समय एक घटना घटी। एक दिन राज्य में विदेशी नर्तकों का एक दल आया, जो देर रात तक अपनी कला का प्रदर्शन करते रहे। उनके प्रदर्शन को देखने के पश्चात् राजकुमार प्रगाढ़ निद्रा में चला गया। सोते हुए मनोहर पर कुछ अप्सराओं की जब दृष्टि पड़ी, तो वे उस पर मोहित हो गईं। अप्सराओं ने इतने सुंदर राजकुमार के लिए इसके ही समकक्ष सुंदर कन्या खोजने का निश्चय किया। इन अप्सराओं ने तीनों लोकों की खोजबीन की; परन्तु मनोहर के अनुरूप कोई रूपवती कन्या उनकी दृष्टि में आयी नहीं। सहसा उनका ध्यान महारस नगर के नरेश की कन्या मधुमालती की ओर गया। दोनों के रूप-सौंदर्य की तुलना करने के लिए उन अप्सराओं ने सोते हुए मनोहर को शैया सहित उठाया और उसे मधुमालती के शयन कक्ष में ले जाकर उसकी शैया के पास रख दिया।

मनोहर की सहसा नींद खुली तो वहाँ के महल की समृद्धि युक्त सुंदरता

देखकर दंग रह गया। इससे भी अधिक विस्मय उसे अपने समीप की शैया पर सोती हुई अनिंद्य सुंदरी को देखकर हुआ। वह अनिंद्य सुंदरी मधुमालती थी। उसे देखते ही मनोहर के हृदय में पूर्व जन्म की प्रीति अंकुरित हो गई। वह सोती हुई मधुमालती के अंग-प्रत्यंग की शोभा को अपलक निहारने लगा। इतने में राजकुमारी मधुमालती जाग पड़ी और चकराकर चारों ओर देखने लगी। ऐसा लगा, मानों कोई मृगी आखेट में सिंह और शार्दूल को पहचानकर दसों दिशाओं में देख रही हो। अपने पास एक सुंदर युवक की शैया देखकर वह विस्मित हुई, परन्तु शीघ्र ही संभलकर वह उठकर बैठ गई और उसने राजकुमार से उसका परिचय पूछा।

कुमार वह अमृतरस वाली बात को सुनकर चकरा गया; परन्तु संभलकर उसने अपना परिचय राजकुमारी को दिया। अपना परिचय देने के बाद उसने राजकुमारी का परिचय जानना चाहा। राजकुमारी ने बतलाया कि वह महारस नामक नगर के राजा विक्रमराज की पुत्री है और नाम मधुमालती है। परिचय के पश्चात् राजकुमार मनोहर का प्रेम और अधिक तीव्र हो गया। राजकुमार ने कहा, कि जिस दिन विघ् ॥ता ने सृष्टि निर्मित की, उसी दिन से वह उससे प्रेम करता है और उसके विरह का बोझ उठाए हुए है। मनोहर ने अनेक उदाहरण देते हुए कहा, कि वे दोनों अभिन्न हैं। हमारी एक ज्योति थी, रूप एक था, एक ही देह थी और एक ही प्राण था। राजकुमारी ने मनोहर की वाणी सुनकर कहा, कि हे कुमार, तुम्हारी प्रीति मेरे मन में व्याप्त हो गई है। सत्य भाव पर केवल पुरुष का ही अधिकार नहीं होता। स्त्री का सत्य भाव पुरुष की अपेक्षा चार गुना अधिक होता है, अतः मैं सत्य कह रही हूँ कि तुम्हारे प्रति मेरी जो प्रीति है, वह कस्तूरी मृग की भाँति छिपाये से नहीं छिप रही है।

कुमारी की प्रेम-रस से सिक्त वाणी सुनकर मनोहर के हृदय में काम-भावना जागृत हो गई। काम-भावना जागृत होने के कारण उसकी देह काँपने लगी। कामाधिक्य के कारण कुमार के नेत्र रक्तिम और लज्जाहीन हो गये। काम वेग के कारण उसका हृदय धड़कने लगा। निश्वास छोड़ते हुए कुमार ने अपने हाथों को कुमारी के उरोजों की ओर बढ़ाया और अपनी शैया त्यागकर कुमारी की शैया पर बैठ गया। मनोहर के भाव समझकर मधुमालती ने उसके हाथ को एक ओर किया तथा अपनी शैया छोड़कर कुमार की शैया पर बैठ गई। कुमारी ने कहा- हे कुमार, ब्रह्मा, विष्णु और शिव की साक्षी में एक-दूसरे के हुए बिना यह अपकीर्ति कारक कार्य करना उचित नहीं है। जो विधाता तुम्हें यहाँ ले आया है वही हमारे और तुम्हारे जन्म को पार लगाएगा। कुमारी के सत्य भाव समझकर कुमार ने कहा कि हे राजकुमारी, मैंने अपनी शपथ और वचन तुम्हारे अनुकूल तुम्हें दी। तुम यदि प्राण हो तो मैं

तुम्हारी देह हूँ। तुम चन्द्रमा हो तो मैं तुम्हारी चाँदनी हूँ। मैं त्रिदेवों की साक्षी देकर तुम्हें अपना बनाता हूँ।

कुमार और कुमारी ने परस्पर वचन दिये, शपथ ली और अपनी मुद्रिकाएँ बदल लीं। फिर दोनों आलिंगनबद्ध होकर प्रेम-क्रीड़ाएँ विभिन्न रीति से करने लगे।

3. मधुमालती का मनोहर से विछोह: कुमार-कुमारी में सारी रात प्रेम-क्रीड़ाएँ चलती रहीं और भोर के पूर्व उन्हें नींद आ गई। जो अप्सराएँ मनोहर को शैया सहित उठाकर मधुमालती के कक्ष में ले गई थीं, वही अप्सराएँ फिर आईं। उन्होंने देखा कि दोनों शैया बदलकर सो रहे हैं, उनकी मुद्रिकाएँ भी बदली हुई हैं। वे जान गई कि दोनों ने परस्पर रति मानी है। अप्सराओं ने कहा कि इन्हें विलग कर वियोग क्यों दिया जाए, क्योंकि वियोग में कष्ट मृत्यु से भी अधिक होता है। मृत्यु तो एक बार आती है, पर वियोग में तिल-तिल कर सौ बार मरण होता है। किन्तु कुमार को यदि यथास्थान नहीं पहुँचाया गया तो उसके माता-पिता और परिजन आदि उसके विरह में अपने प्राणों को खो देंगे, जिसका दोष हम पर लगेगा। ऐसा सोचकर सभी अप्सराएँ एकमत हुई और कुमार को शैया सहित वहीं रख आई, जहाँ से वे उसे उठा लाई थीं।

इधर भोर होते ही कुमारी की सखियों ने देखा कि रात्रि में कोई पुरुष था जो कुमारी के साथ रमण करता रहा। सुरत के चिह्नों को देखकर सखियाँ भयभीत हो गई कि यदि राजा को पता चल जाएगा तो उन सबों को भट्टी में झोंक दिया जाएगा। सखियों ने मधुमालती को जगाया और कुल-धर्म की दुहाई देते हुए उसकी भर्त्सना की कि क्षणिक सुख के लिए अपने सिर पाप चढ़ाया।

मधुमालती चैतन्य हुई और कहने लगी कि हे सखियो, तुम मुझे व्यर्थ गाली मत दो। मैंने ऐसा कोई भी कृत्य नहीं किया है, जिससे कुल को कलंक लगे और अपयश फैले। मैं नहीं जानती कि जो हुआ, वह प्रत्यक्ष था अथवा स्वप्न । परन्तु रात्रि में एक कुमार जो आया था, वह मेरे प्राण ले गया और मुझे विरह दे गया। अब मैं उसके बिना कैसे अपना जीवन व्यतीत कर पाऊँगी? सखियों ने उसे समझाया कि-हे कुमारी, दुख के बिना संसार में सुख की कल्पना नहीं की जा सकती। तुम जिसके वियोग में दुखी हो रही हो, तो उसे भी तुम्हारी चिन्ता होगी। वह तुम्हारा विरह अवश्य दूर करेगा।

वहाँ मनोहर के जागने पर उसकी भी यही दशा हुई। उसने देखा कि न तो वह महल है और न वह राजकुमारी जिसके साथ रात्रि में काम-क्रीड़ा की थी। वह कुमारी के रूप व गुणों को स्मरण कर रोने लगा और पृथ्वी पर सिर पटकने लगा। कुमार की यह दशा देखकर सहजा नामक धाय दौड़ी आई और उसने कुमार से इस

दुख का कारण जानना चाहा। राजकुमार ने अपनी संपूर्ण कथा और विरह-वर्णन धाय से किया। राजकुमार ने कहा कि हे धाय, प्रेमाग्नि सब कुछ भस्म कर देती है। प्रेम की वार्ता सहस्र मुख से भी नहीं की जा सकती है।

कुमार की स्थिति अत्यंत जटिल हो गई। उसने अपने केश नोंच लिए, वस्त्र फाड़ दिये और विरह से व्याकुल होकर धरती पर गिर पड़ा। राजभवन में कोलाहल मच गया। शोर सुनकर प्रजा जन उस ओर दौड़ पड़े। समाचार सुनकर कुमार की माता कमलावती भी अपने रेशमी वस्त्रों को फाड़ती हुई दौड़ पड़ी। राजा और गुणीजनों के साथ राज्य भर के वैद्य आ गये। वैद्यों ने बार-बार नाड़ी-परीक्षण किया और कहा कि कुमार को कोई विकार नहीं है। एक वैद्य ने कहा कि कुमार को तो कुछ विरह का भाव ज्ञात होता है, उसका हम क्या उपचार कर सकते हैं? पंडित और सभी गुणज्ञ जन वहाँ से निराश होकर लौट पड़े।

राज्य का एक मंत्री अत्यंत चतुर था। चारों खण्ड में उसके समान गुणज्ञ और दूसरा न था, इसलिए उसका नाम गुणनिधान था। वह मणियों तथा मंत्रों के प्रयोग में भी पारंगत था। वह कुमार की व्याधि को जान गया और उससे कहा- हे कुमार, तू किस पर अनुरक्त है, मुझे बताओ। यदि वह देव-कन्या भी होगी, तब भी अपनी मंत्र-शक्ति से उसे पृथ्वी पर लाकर तुझ से मिलवाऊँगा।

मंत्री की बात सुनकर राजकुमार ने संपूर्ण वृत्तान्त उसे बता दिया। कुमारी की ओर से कुमार का हृदय विमुख करने के उद्देश्य से मंत्री ने स्त्री के तमाम अवगुणों का बखान किया, परन्तु कुमार अपनी हठ से न डिगा। कुमार ने कहा- तेरे हृदय में प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ, अतः तू किसी दूसरे प्रेम की विरह-व्यथा क्या जाने? कुमार पर महता के उपदेशों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब वह निराश हो गया और उसने जाकर राजा से प्रार्थना की कि अब आप शीघ्र ही अपने पुत्र को बचाएँ। राजा सुनकर विषाद के कारण रोने लगा और विलाप करने लगा। महल के कोलाहल को सुनकर समूचा नगर भी विषाद में पड़ गया।

4. कुमार का गृह-त्याग करना: राजा ने अपनी पगड़ी धरती पर फेंक दी और रानी कमला उसके पैर पकड़कर रोने लगी। माता-पिता की यह स्थिति देखते ही कुमार के हृदय में दया उत्पन्न हुई और उसने अपने दुख का कारण अपने माता- पिता को बता दिया। कुमार ने रोकर यह भी कहा कि यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अपने जीवन को ढूँढ़ कर ले आऊँ।

मनोहर की बातें सुनकर उसके माता-पिता रोने लगे और याचना-सी करने लगे कि वृद्धावस्था में हमें छोड़कर मत जाओ। तुम्हारे जाने से राज्य-व्यवस्था ध्वस्त हो जाएगी। रो-रोकर कुमार के माता-पिता ने बहुत कुछ कहा, परन्तु उसके चित्त

में कुछ भी न चढ़ा। राजकुमार से प्रेम के विरह का दुख न सहा गया। उसने गोरखपंथी साधु की वेशभूषा धारण कर ली। कुमार के माता-पिता उसके पास फिर आए और अपने पुत्र की दशा देखकर रोने लगे। उन्होंने कुमार को फिर समझाया, परन्तु सब व्यर्थ गये। भोर होने पर कुमार घर से निकल पड़ा। राजा ने अनेक प्रकार की सेना, अनुचर और सामग्री राजकुमार के साथ की तथा महारस देश का पता पूछते-पूछते स्वयं बीस कोस तक उसके साथ आये। सब लोग चलते-चलते समुद्र के किनारे आ गये। हाथी-घोड़े, सेना और विविध प्रकार की सामग्री के साथ कुमार जलयान पर सवार हो गया। चार माह तक जहाज उस अथाह समुद्र में चलता रहा।

5. कुमार पर पड़ने वाली विपत्तियाँ और पेमा से भेंट: विधि का विधान ! चार माह के पश्चात् समुद्र में उठी उत्ताल तरंगों तथा अंधकार के कारण जहाज दिशा से भटक गया और गहरी भँवर में फँस गया। भंवर में फँसते ही जहाज के सात सौ टुकड़े हो गये और सामग्री सहित आए हुए सारे परिजन-पुरजन समुद्र में डूबने लगे। कुमार ने अपने जीवन की आशा छोड़ दी, फिर भी वह ईश्वर से रक्षार्थ प्रार्थना करने लगा। ईश्वर की कृपा से कुमार को समुद्र में बहता हुआ लकड़ी का एक टुकड़ा हाथ लग गया, जो उसके लिए आधार बन गया। परन्तु, यह आधार क्षणिक सिद्ध हुआ और ऊँची-ऊँची उठती लहरों में कुमार फिर फँस गया तथा अचेत हो गया।

चैतन्य होने पर कुमार ने स्वयं को समुद्र तट पर पाया जहाँ सूर्य-चंद्र का प्रकाश था। उसके साथ का संपूर्ण वैभव समाप्त हो गया था। कुमार के साथ यदि कुछ बचा था, तो वह था मधुमालती के विरह का दुख। वह चल पड़ा और चलते- चलते एक ऐसे सघन वन में जा पहुँचा, जहाँ कभी कोई मनुष्य आया ही नहीं था। वह पल में दौड़ता और पल में रोता। उस कदली वन में शेर, शार्दूल और हाथी भयंकर स्वर में गर्जना कर रहे थे। वन के घने और रात्रि के अंधकार में कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। कुमार इसी वन में एक स्थान पर आसन लगाकर बैठ गया और अपनी प्रिय (मधुमालती) का स्मरण कर उसने रात व्यतीत की।

भोर होने पर कुमार फिर आगे बढ़ा। अपनी प्रेम-प्रिया का नाम रटते-रटते वह जा रहा था कि उसे एक चौखण्डी (चार खण्डों की गढ़ी) दिखाई दी। वह उस चौखण्डी को देखकर सोचने-समझने लगा और फिर उसके भीतर चला गया। भीतर का दृश्य देखकर वह आश्चर्य चकित रह गया। एक अत्यंत रूपवती युवती सोलह श्रृंगार किए एक धवल व रंगीन शैया पर निश्चिन्त होकर सो रही थी। उसका उन्मत्त और निष्कलंक यौवन अत्यंत आकर्षक था। कुमार उसे कितनी ही देर तक अपलक निहारता रहा। सहसा युवती ने अँगड़ाई लेकर करवट बदली और

जाग पड़ी। एक अपरिचित किन्तु सुंदर मनुष्य को अपने कक्ष में देखकर युवती को अत्यंत विस्मय हुआ। युवती कुमार से उसका परिचय पूछने लगी। उसने राजकुमार से कहा कि तू सच बता कि "किसके वियोग में तूने घर-द्वार छोड़ दिया? किसके प्रेम में अनुरक्त होकर उसे पाने तू घर से निकल पड़ा है?" कुमार ने अपना सम्पूर्ण परिचय उस सुंदरी को दिया और उससे जानना चाहा कि जिस वन में मनुष्य का प्रवेश भी नहीं हो पाता, ऐसे इस वन में तू कौन है जो इतनी निर्भय और निःशंक होकर रह रही है?

सुंदरी अपना परिचय देते हुए बोली- में चित्त विश्राम नगर के राजा चित्रसेन की पुत्री हूँ और मेरा नाम पेमा है। मेरे पिता का लखराँव (एक लाख वृक्षों का बाग) था जिस पर सदैव वसंत ऋतु छाई रहती थी। उस बाग में एक सुंदर चित्रसारी थी, जहाँ मैं अपनी सखियों सहित भ्रमण किया करती थी।

एक दिन में अपनी सखियों सहित उसी चित्रसारी में खेल रही थी कि एक राक्षस वहाँ आ गया। हम सब वृक्षों के पीछे भयवश छुप गये। उस राक्षस ने मेरी साठ सहेलियों में से केवल मुझे पकड़ा और यहाँ इस वन में लाकर मुझे कैद कर लिया। एक वर्ष से में यहाँ हूँ और मैंने स्वप्न में भी किसी मनुष्य का नाम नहीं सुना। मैं मुक्त होना चाहती हूँ, परन्तु कोई मार्ग नहीं मिला। अपने परिवार की याद में मैं दिन- रात रक्त के आँसू बहाती रहती हूँ।

राक्षस का नाम सुनकर कुमार के मन में भय उत्पन्न हो गया और उसे लगा कि कहीं यदि वह आ जाएगा तो मुझे मार डालेगा। फिर मरने के बाद मुझे अत्यंत पछतावा होगा, क्योंकि अभी तो मुझे एक बहुत बड़ा कार्य करना है। ऐसे विचार कर कुमार वहाँ से जाने लगा तो पेमा आँसू भरकर उसके पैरों पर गिर पड़ी। कुमार का हृदय पेमा के दुख से द्रवित हो गया। उसने पेमा को उठाया। पेमा ने कहा-राक्षस यहाँ से अभी गया है अतः वह अब इतनी जल्दी नहीं आएगा। तुम डरो मत। वह सारे दिन विचरण करता है। और रात को यहाँ आकर मुझ पर पहरा देता है। अब तुम मुझसे अपना वह दुख कहो, जिसके कारण तुम्हें योगी होना पड़ा। राजकुमार मनोहर ने तब अपने और मधुमालती के प्रेम संबंधों को उद्घाटित करते हुए सारी कथा-व्यथा पेमा को सुना दी। कथा सुनने के पश्चात् पेमा ने कहा, कि हे कुमार अब तुम्हारे दुख के दिन व्यतीत हुए और अब सुख के दिन आने वाले हैं। मधुमालती को मैं जानती हूँ, क्योंकि उससे मेरी बहिन का नाता है। उसकी माँ प्रत्येक द्वितीया को मधुमालती के साथ मेरे घर आती है। कल ही द्वितीया है। तुम यहाँ से मेरे नगर को जाओ, तुम्हें कल की मधुमालती के दर्शन हो जायेंगे। अब तुम यहाँ से जाओ, क्योंकि राक्षस के आने का समय हो रहा है। मेरा क्या है, मेरा जीवन तो यहीं राक्षस

की कैद में कटना है। परन्तु तुम अपनी प्रिय को जाकर प्राप्त करो।

पेमा के वचन सुनकर राजकुमार का पौरुष जाग उठा और वह बोला, कि मैंने तुम्हें बहिन मान लिया है। अब तुम्हें लिये बिना यहाँ से न जाऊँगा। तब पेमा ने उसे बहुत से अस्त्र दिये। कुमार ने इन अस्त्रों में से खड्ग, भाले, बर्छे व कटार आदि को चुनकर अपने पास राक्षस से युद्ध करने के लिए संभाल कर रख लिये। अचानक ही कुमार ने राक्षस की रेखा दक्षिण दिशा में देखी, जो आकाश और धरती के बीच उड़ता चला आ रहा था। राक्षस आकर उस भवन में रुक गया, जहाँ पेमा कैद थी। राक्षस के पाँच सिर थे, दस भुजाएँ थीं और अंगारों की भाँति दहकते हुए दस नेत्र थे। वह अत्यंत भयावह लग रहा था।

6. पेमा की मुक्ति और मधुमालती-मनोहर का मिलन: राक्षस की दृष्टि जैसे ही कुमार पर पड़ी, वह क्रोधित होकर उसका परिचय जानने की चेष्टा करने लगा। राक्षस की अनर्गल बातें सुनकर कुमार क्रोध के कारण सिर से पाँव तक काँपने लगा और कहने लगा कि तू व्यर्थ की बकवास बंद कर और युद्ध कर। मैं यदि आज पेमा को तेरे बंधन से मुक्त कर न ले जाऊँ, तो रघुवंशी न कहलाऊँ।

राक्षस और कुमार का युद्ध होने लगा। राक्षस ने ऐसा झपट्टा मारा कि कुमार की तलवार छूट गई; परंतु राक्षस का एक मस्तक और दो भुजाएँ टूट गई। राक्षस ने अपने कटे हुए अवयवों को उठा लिया और किलकारी भरता हुआ आकाश में उड़ गया। पल भर में वह कटे हुए अंगों को यथा स्थान जोड़कर फिर युद्ध के लिए तत्पर हो गया और अनेक प्रकार की माया दिखलाता हुआ कुमार से लड़ने लगा। लड़ते- लड़ते सारा दिन हो गया और रात आ गई, परंतु दोनों के युद्ध का कोई परिणाम न निकला। राक्षस भूख से व्याकुल होकर दूसरे दिन युद्ध करने की बात कहकर चला गया।

राक्षस के जाने के बाद पेमा ने कुमार को बताया कि इसे ऐसे नहीं मारा जा सकता। दक्षिण दिशा में एक उपवन है, जिसमें एक वृक्ष अमृत फल का है। इस वृक्ष में राक्षस के प्राण बसते हैं। इस वृक्ष को नष्ट करने पर ही इसे मारा जा सकता है। कुमार ने ईश्वर का स्मरण करते हुए उस वृक्ष को समूल उखाड़ दिया और जला दिया। दूसरे दिन राक्षस ने फिर कुमार से घोर युद्ध किया और उसने कुमार पर चक्र से प्रहार किया। कुमार ने स्वयं को बचाते हुए राक्षस का पाँचवा सिर काट लिया। राक्षस अपने सिर को लेकर दक्षिण दिशा में स्थित उपवन की ओर भागा, पर अमृत वृक्ष न पाकर अत्यंत निराश और क्रोधित हुआ। कुमार भी उसका पीछा करता हुआ उपवन में जा पहुँचा। राक्षस का प्राणांत हो गया। कुमार वापस चौखंडी आ गया, जहाँ पेमा थी।

कुमार को लेकर पेमा अपने नगर आई। पेमा के कहने पर कुमार ने अपने योगी वेष का परित्याग कर दिया। अपना नगर निकट आया समझकर पेमा ने कुमार से कहा, कि मैं एक राजकन्या हूँ, मैं इस वेष में यदि नगर में प्रवेश करूँगी तो जग-हँसाई होगी। दोनों नगर के पास के एक गाँव में रुक गये। पेमा ने एक पत्र में अपनी संपूर्ण कथा लिखकर एक बारी के द्वारा वह पत्र अपने पिता के पास भिजवाया। पत्र पढ़कर राजा-रानी और समस्त प्रजा आनन्दमग्न हो गई। सबके साथ राजा-रानी ने ग्राम की ओर प्रस्थान किया और पेमा को राजमहल में ले आया गया। राजा ने अनेक प्रकार के न्यौछावर किये और याचकों को दान दिया। पेमा ने मनोहर की वीरता के संबंध में अपने माता-पिता को बताते हुए कहा कि अब यह मेरा धर्म भाई है। यह मधुमालती के विरह में योगी बनकर भटक रहा था। पेमा के वचन सुनकर राजा ने मनोहर को आदर सहित बुलवाया और गले से लगा लिया।

मनोहर को राजा चित्रसेन का आतिथ्य ग्रहण करते हुए चार दिन हो गये। उसके हृदय में विरह की ज्वाला और अधिक प्रदीप्त हो गई। कुमार ने अपना दुख पेमा से कहा। पेमा ने कहा कि- "कल द्वितीया है और कल मधुमालती अपनी माँ के साथ आने वाली है। कल तुम वाटिका की चित्रसारी में बैठ जाना। खेल के बहाने में उसे चित्रसारी में लाऊँगी और तुम्हारी विरह वेदना उससे तुम्हें मिलाकर दूर कर दूँगी।" पेमा के वचन सुनकर मनोहर को अत्यंत हर्ष हुआ और व्यग्रता से दूसरे दिन की प्रतीक्षा करने लगा।

द्वितीया के दिन मधुमालती अपनी माँ के साथ आई। पेमा मधुमालती के गले से मिली। पेमा ने अपनी समस्त कथा के साथ-साथ कुमार की विरह-वेदना का वर्णन मधुमालती से किया। मधुमालती चकरा गई कि उस कुमार से मेरी क्या पहचान ? परंतु पेमा ने कुमार से उसकी मुद्रिका लेकर जब उसे दिखाई तो वह रोने लगी और अपनी वेदना पेमा से कह दी। पेमा ने मधुमालती को उठाया और उसे चित्रसारी के भीतर कर दिया तथा स्वयं एक सखी के साथ चित्रसारी के द्वार पर पहरा देने लगी। मनोहर और मधुमालती का भावभीना मिलन हुआ। दोनों ने आँसू बहाये और आँसुओं के मध्य अपनी विरह-वेदना व्यक्त की।

दीर्घान्तराल के उपरांत दोनों के मिलन से उनकी सुप्त भावनाएँ उद्दीप्त हो गई और वे काम-क्रीड़ा करने लगे। जब पर्याप्त समय हो गया और संध्या घिर आई, तब मधुमालती की माँ को अपनी बेटी के न आने की चिन्ता हुई। पर, पेमा की माँ ने कहा कि दोनों सखियाँ बहुत दिनों के पश्चात् मिली हैं, अतः मिल रही होंगी, बातें कर रही होंगी और खेल रही होंगी। फिर भी मैंने अपनी दासी को भेजा

है, वे दोनों आ जाएँगी। परन्तु मधुरा की बात पर रानी रूपमंजरी ने ध्यान नहीं दिया और स्वयं खोज करती हुई चित्रसारी पहुँच गई। चित्रसारी में उसने मधुमालती को मनोहर की बाहों में देखा तो क्रोधित होती हुई पेमा को भला-बुरा कहने लगी। पेमा ने मधुमालती की माँ रूपमंजरी से दोनों के निश्छल पेम और परस्पर मुद्रिकाएँ बदलने की बात कही और मनोहर के परिवार का परिचय दिया। पेमा ने यह भी कहा कि इन दोनों के बीच अधर्म जैसा कोई कार्य नहीं हुआ है। मधुमालती आज भी वैसी ही अक्षत है, जैसी जन्म के समय थी।

पेमा की बातें सुनकर रूपमंजरी को संतोष हुआ; परन्तु उसका क्रोध शांत नहीं हुआ। उसने सखियों से उन दोनों को अलग-अलग करने को कहा। सखियों ने उन दोनों को अलग-अलग कर दिया, परन्तु उनकी निद्रा भंग नहीं हुई। मंत्र शक्ति द्वारा कुमार को उसके नगर कनैगिरि, सोती हुई स्थिति में रूपमंजरी ने शैया सहित भेजा दिया और वह मधुमालती को लेकर अपने नगर चितविश्राम नगर वापस लौट गई।

7. कुमार-कुमारी का पुनर्विछोह एवं मधुमालती का पक्षी होना : राजकुमार जब जागा, तो मधुमालती को न पाकर विरह से व्याकुल हो गया। उसे रह-रहकर रात्रि-मिलन का स्मरण होता। उसे समझ नहीं आ रहा था कि कुछ देर पूर्व घटित घटना वास्तविकता थी अथवा स्वप्न था? कुमार मधुमालती की याद में चल पड़ा।

इधर मधुमालती की दशा भी जागने पर वही हुई, जो कुमार की हुई थी। वह रो रही थी और बार-बार दीर्घ श्वांस ले रही थी। रूपमंजरी ने उसे बहुत समझाया, उसे कुल-कलंकिनी तक कहा, उसकी कठोर भर्त्सना की, शिक्षा दी। परंतु जब उस प्रेम-दीवानी पर कोई उपाय सिद्ध नहीं हुआ तव रूपमंजरी ने एक चुल्लू पानी लेकर और मंत्र पढ़कर मधुमालती पर छिड़क दिया। जल के छींटे पड़ते ही मधुमालती एक सुंदर पक्षी बनकर उड़ गई। उस सुंदर पक्षी को पकड़ने के लिए सारा नगर उसके पीछे दौड़ा, परन्तु उसे पकड़ न सका। उसके माता-पिता पक्षी रूपी अपनी बेटी के चले जाने के कारण अत्यंत व्यथित होकर रोने लगे और पछताने लगे। मधुमालती रूपी पक्षी ने अपना सम्पूर्ण सुख खोया और वृक्षों पर बसेरा किया। उसने चारों ओर घूम-घूमकर, उड़कर देखा; परन्तु उसे कहीं अपना प्रियतम दिखाई नहीं दिया। कदली वन, गोदावरी, मथुरा, प्रयाग, जगन्नाथ, द्वारका और समस्त तीर्थों में उसने भ्रमण किया तथा प्रत्येक से अपना खोया हुआ सौभाग्य माँगा।

8. ताराचन्द से मधुमालती की भेंट: पक्षी बनी मधुमालती व्याकुल होकर अपने प्रियतम को खोजती रही; परन्तु उसे उसका कहीं कोई ठिकाना न मिला। एक दिन उसकी दृष्टि एक ऐसे व्यक्ति पर पड़ी, जिसका रूप रंग मनोहर की भाँति था !

उस व्यक्ति का नाम ताराचंद था और वह मानगढ़ में पद्मपुरी का कुमार था। वह पक्षी उसके महल की मुड़ेर पर जा बैठा। ताराचन्द की दृष्टि उस सुंदर पक्षी पर पड़ी और उसका चित्त पक्षी के प्रति अनुरक्त हो गया। उसने सेवकों से नगर के समस्त बहेलियों को बुला लाने को कहा। बहेलियों ने उस पक्षी के लिए चारों ओर से जाल फैलाया। मनोहर के कुशल समाचार जानने का यह अच्छा उपाय है, यह सोचकर मधुमालती जानबूझकर जाल में फँस गई। अब ताराचंद एक पल के लिए भी उस सुंदर पक्षी के पिंजड़े को स्वयं से पृथक् नहीं करता। ताराचन्द ने अनेक प्रकार के सुस्वादु फल, दाने और खाद्य सामग्री पिंजड़ें में रखी, परन्तु पक्षी ने तीन दिन तक कुछ नहीं खाया। परिणामतः कुमार भी तीन दिन तक भूखा रहा। पक्षी ने सोचा कि कुमार क्यों मेरे पीछे अपने प्राणों को खो रहा है और पक्षी ने कुमार से कहा कि मैं पक्षी और तुम राजकुमार। मुझमें और तुममें कैसा प्रेम संबंध? तुम क्यों भूखे रह रहे हो ? राजकुमार पक्षी को मनुष्य की बोली बोलते देख चकरा गया और उससे अपनी संपूर्ण कहानी सुनाने की याचना की। राजकुमारी मधुमालती ने अपनी आदि से लेकर अब तक की सारी गाथा ताराचंद को सुना दी। पक्षी बनी मधुमालती की करुण गाथा सुनकर कुमार ताराचंद को बहुत दुख हुआ और वह बोला कि हे बाला, मैं तेरे दुख दूर करने का यथासंभव प्रयास करूँगा, यहाँ तक कि असंभव को भी ग्रहण करूँगा और तेरे प्रिय से तुझे मिलवाऊँगा। किन्तु इसके लिए सबसे पहले तुझे पक्षी की योनि से मुक्त कराने महारस नगर ले जाऊँगा।

ताराचंद ने अपने एक बाल सखा को आधी रात के समय मंत्रणा के लिए बुलवा लिया और उसे अपने साथ चलने के लिए तैयार किया। तदनन्तर कुमार ने पुण्य अवधि नामक थानेदार को आधी रात को बुलाया और पवन-वेग की भाँति चलने वाले सौ घोड़ों को तैयार करने को कहा। कुमार ने दस गाड़ी द्रव्य भी लदवाया और शुक्ल पक्ष की सप्तमी शनिवार की शुभ लग्न में पिंजड़े के साथ महारस नगर की ओर प्रस्थान किया।

9. मधुमालती की पक्षी रूप से मुक्ति और उसका विवाह : महारस नगर का पता पूछते-पूछते ताराचंद आगे बढ़ा और नगर के बाहर जौनां मालिन के बाग में उतरा। जौनां मालिन पुष्प लेकर कुमार के पास आई और उसका परिचय प्राप्त किया। ताराचंद ने गाँव में उदासी-सी छाई रहने का कारण पूछा तो जौनां ने बताया कि जब से मधुमालती गई है, तब से सारे राज्य में विषाद व्याप्त है। ताराचंद ने पक्षी बनी मधुमालती से पूछा, कि तुम इसे पहचानती हो? तो उसने कहा कि यह मेरी बाल सखी है। जौनां पिंजड़े को गले से लगाकर खूब रोई। कुमार के कहने पर जौनां ने यह समाचार राजा-रानी को सुनाया। समाचार सुनते ही राजा-रानी जौनां के

बाग की ओर दौड़ पड़े। रूपमंजरी को रोता देख सारा नगर रोने लगा। ताराचंद ने पिंजड़ा रानी के सामने रख दिया। रोती हुई रानी ने पक्षी को कुमारी के रूप में परिवर्तित कर दिया। नगर के घर-घर में मंगल बधावा होने लगे। मधुमालती को स्नान कराया गया, नये-नये वस्त्राभूषण पहनाये गये और इसका श्रृंगार किया गया। ताराचंद ने राजा-रानी को उसकी खोई हुई पुत्री लाकर दी थी। अतः दोनों ने विचार किया कि मधुमालती का विवाह ताराचंद से कर दिया जाए, परन्तु ताराचंद ने यह कहते हुए प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया कि मधुमालती मेरी वचनहारी हुई बहिन है। इसका विवाह इसके प्रिय पात्र से ही किया जाना चाहिए, उसकी खोज की जानी चाहिए।

ताराचंद की बात मानकर रानी ने पेमा को पत्र लिखा, जिसमें सारा वृत्तांत था। रानी ने चतुर बारियों को बुलाकर उन्हें वह पत्र पेमा को दे आने के लिए भेजा। मधुमालती ने बारियों को अलग से बुलाकर पेमा के लिए संदेश कहलाया कि मेरे हृदय में तुम्हारी ही लगाई हुई आग है। तुम्हीं उस योगी से मुझे मिलवाकर इस आग को शांत कर सकती हो। मधुमालती ने बारह मासों में हुई विरह की पीर को भी व्यक्त किया।

बारियों ने चितविश्राम नगर पहुँचकर पेमा को रानी रूपमंजरी का पत्र दिया और मधुमालती का विस्तृत संदेश सुनाया। संदेश सुनकर पेमा को अत्यंत दुख हुआ और वह बहुत रोई। वह बारी से कहने लगी कि जिस दिन से मधुमालती की माँ ने कुमार को मधुमालती से दूर किया, उस दिन से मैंने कुमार का कोई समाचार नहीं पाया कि वह कहाँ है और कैसा है? यदि वह मृत्यु को प्राप्त न हुआ होगा, तो अवश्य मधुमालती को प्राप्त होगा। इतने में ही एक दासी ने आकर सूचना दी कि द्वार पर एक योगी खड़ा है जिसकी अनुकृति तुम्हारे वचनबद्ध भाई मनोहर के समान है। पेमा ने द्वार पर जाकर देखा तो मनोहर था। वह मनोहर के गले से लगकर खूब रोई। कुमार के आने के समाचार से सारा चितविश्राम नगर मोद मग्न हो उठा। पेमा मनोहर को लेकर राजभवन गई और उससे कहा कि अब तुम अपना योगी का वेष त्याग दो, क्योंकि अब तुम्हें सिद्धि प्राप्त हो गई और शीघ्र ही तुम्हें सुख मिलने वाला है। इसके पश्चात् पेमा ने अब तक की सारी घटित घटना कुमार को सुनाई और रूपमंजरी की पत्रिका का उत्तर लिखकर बारियों को दे दिया।

महारस नगर लौटकर बारियों ने पत्र दिया और समाचार सुनाए तब नगर में हर्ष व्याप्त हो गया। शुभ दिन में राजा विक्रमराज ने सपरिवार व दल-बल सहित चितुविश्राम नगर के लिए प्रस्थान किया। दस दिवस में नगर के पास पहुँचकर राजा विक्रमराज ने अपना डेरा डाला और अपने मंत्रियों, वृद्धों सभापतियों तथा ज्ञानियों

के अतिरिक्त ताराचंद से भी मंत्रणा की। यह निश्चित किया गया कि पेमा और उसके पिता राजा चित्रसेन को बुलाकर उनके मतानुसार आगे की कार्यवाही की जाए। ऐसा ही किया गया।

महाराज चित्रसेन पेमा के साथ विक्रमराज के डेरे की ओर चले। उनके साथ अनेक सभासद, मंत्री, पंडित आदि भी थे। पेमा भी अपनी माँ और सखियों सहित चली। दोनों राजा परस्पर मिले। पंडितों ने शुभ लग्न विचारा और राजा चित्रसेन ने राजा विक्रमराज से अपनी ओर से तैयारियाँ करने को कहा।

विक्रमराज के जाते ही महाराज चित्रसेन ने मनोहर के विवाह की तैयारियाँ प्रारंभ कर दीं। सारा नगर सजाया गया। मनोहर का उबटनादि करवाया गया। शुभ मुहूर्त में बारात ने प्रस्थान किया। सारा नगर बारात में चला। संध्या होते-होते बारात राजद्वार पर आ गई। विभिन्न प्रकार के मंगल गान और बधावा होने लगे। विभिन्न प्रकार की वैवाहिक रीतियाँ सम्पन्न होने लगीं। शुभ लग्न में ब्राह्मणों ने मनोहर और मधुमालती का विवाह सम्पन्न कराया। वर-वधू के अशांत हृदय शांत हुए। दोनों को ले जाकर सुख-शाला में सुरत-शैया पर बैठा दिया गया, जहाँ नव दम्पति का प्रथम बार दैहिक समागम हुआ। प्रातः पेमा सहित अन्य सखियाँ मधुमालती से उसकी मधुयामिनी की बात जानने की उत्कण्ठा लिए हुए उससे विनोद करने लगीं।

विवाह के पश्चात् असीम दहेज और दास-दासियाँ देकर बारात की विदा की गई। बारात के चलने पर मनोहर ने मधुमालती से उसके भाई ताराचन्द से मिलने की इच्छा व्यक्त की। ताराचन्द से मिलने पर कुमार ने उसके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की। मनोहर ने ताराचन्द के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि यहाँ समस्त जन एक ही देश के हैं, हम दोनों ही विदेशी हैं तो क्यों न हम दोनों एक साथ कुछ समय तक रहें और आमोद-प्रमोद में कुछ दिन व्यतीत करें। ताराचन्द ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया और दोनों ने राजा से इस संबंध में प्रार्थना की। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक दोनों कुमारों की प्रार्थना स्वीकार की। बारात वाद्य-ध्वनि करती हुई नगर में प्रविष्ट हुई। मधुमालती को उतारा गया। राजमहल के भीतर मधुमालती अपनी सखियों सहित तथा राजमहल के बाहर दोनों कुमार आमोद-प्रमोद में अपने दिन व्यतीत करने लगे। वे कभी पल भर को भी पृथक् न होते। साथ-साथ मृगया को जाते, साथ-साथ भोजन करते और साथ-साथ उठते बैठते। इस प्रकार अत्यंत सुख से उन दोनों कुमारों के और मधुमालती व पेमा के दिन व्यतीत होने लगे।

10. ताराचन्द-पेमा का विवाह: एक दिन आखेट और जलक्रीड़ा के पश्चात् दोनों कुमार चित्रसारी में चले गये। यहाँ मधुमालती, पेमा तथा अन्य सहेलियों सहित

झूला झूल रही थी। सहसा ही ताराचन्द की दृष्टि पेमा की दृष्टि से मिली। पेमा के सौंदर्य को देखकर ताराचन्द मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। बाग में कोहराम मच गया। समाचार सुनकर मधुमालती दौड़ी हुई आई और उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। मनोहर भी शोर सुनकर चित्रसारी से आ गया और तारचन्द को पालकी में डलवा कर राजभवन ले गया। सभी गुणी, विद्वान आदि राजाज्ञा से वहाँ आ गये, पर कोई ताराचन्द की व्याधि का पता न लगा सके।

ताराचन्द के स्वस्थ होने पर मधुमालती ने उसके मूर्च्छित होने का कारण पूछा और कहा कि मुझसे लज्जा न कर, अपने प्रेम पात्र का नाम मुझसे कह। तब ताराचन्द ने कहा कि मैं उसका नाम नहीं जानता, जो झूले पर पेंगे ले रही थी, पर वह अद्‌भुत है। ताराचन्द ने उस सुंदरी का नख-शिख वर्णन किया। ताराचन्द द्वारा वर्णित रूप- माधुरी को सुनकर मधुमालती अवाक् रह गई, क्योंकि उसकी सखियों में पेमा को छोड़कर कोई दूसरी ऐसी नहीं है, जो ताराचन्द द्वारा वर्णित सौंदर्य पर सटीक उतरती हो। मधुमालती ने यह रहस्य मनोहर को बताया। मनोहर ने कहा, जब मैं राक्षस को मार कर पेमा को लाया था, तभी उसके माता-पिता ने पेमा को मुझे सौंप दिया था, पर तब मुझे उसकी आवश्यकता नहीं थी।

मनोहर मधुमालती ने पेमा का ताराचन्द से विवाह का प्रस्ताव पेमा के माता- पिता के सम्मुख रखा। राजा ने कहा- मुझसे क्यों पूछते हो? राक्षस की कारा से तुम उसे छुड़ाकर लाए थे, मैंने तभी उसे तुम्हें सौंप दिया था। अब तुम्हीं इसके अच्छे-बुरे के साथी हो।

राजा-रानी की स्वीकृति के पश्चात् पेमा और ताराचन्द के विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। ज्योतिषियों ने कुण्डलियों के अनुसार लग्न निकाले। घर-घर बधावा होने लगे और शुभ मुहूर्त में पेमा व ताराचन्द का विवाह सम्पन्न हो गया।

11. दोनों कुमारों का अपने-अपने देश को प्रस्थान करना: मनोहर और ताराचन्द का पर्याप्त समय सुख पूर्वक व्यतीत हुआ। अब दोनों कुमारों ने अपने- अपने घर जाने के लिए मंत्रणा की और राजा से अपनी बात कही। राजा को सुनकर विषाद हुआ, पर अंत में उसने सोचा कि बेटियों को एक दिन तो जाना ही पड़ेगा। यह सोचकर उसने स्वीकृति दी। दोनों के विदाई की तैयारियाँ होने लगीं। मधुमालती और पेमा अपनी-अपनी माताओं तथा सखियों से भेंटकर बहुत रोयीं। रूपमंजरी और मधुरा ने अपनी-अपनी पुत्रियों को नारी-धर्म की शिक्षा दी। दोनों कुमारियाँ सबसे भेंटकर विदा हुई। सारे नगर में विषाद का वातावरण व्याप्त था। सब रो रहे थे।

दोनों कुमार अपनी-अपनी पत्नियों सहित चार पड़ावों तक साथ-साथ चले फिर दोनों अपने-अपने राज्य में जाने के लिए पृथक् पृथक् हुए। विदाई की इस बेला

में दोनों कुमार गले-मिलकर खूब रोये तो मधुमालती और पेमा की विह्वलता का ठिकाना न रहा। वे दोनों भी खूब रोई। इस प्रकार मधुमालती कनकगिरी (कनैगिरि) और पेमा पद्मनगरपुर अपने-अपने पतियों के साथ गई।

12. कथानक का समापन: दो वर्षों तक चलते-चलते कनकगिरि गढ़ के पास मनोहर पहुँचा। इसी समय राजा का एक गुणनिधान तिवारी नामक मंत्री कनकगिरि के राजा सूरजभान से विदा लेकर गंगा-स्नान के लिए उसी मार्ग से जा रहा था-जिस मार्ग से मनोहर आ रहा था। दोनों मिले। मंत्री ने मनोहर को पहचान लिया। मनोहर ने अपने माता-पिता के कुशल समाचार जाने और संतुष्ट हुआ। मंत्री ने कहा-जब से तुम गये हो, तब से राजा ने समस्त राजकाज छोड़ दिये हैं। वे काले कपड़े पहने रहते हैं। मंत्री वापस महारसनगर को आया उसने राजा को मनोहर के आने का समाचार सुनाया। सुनकर राजा चैतन्य हुआ। घर-घर आनन्दोत्सव होने लगा। सवेरा होने पर मनोहर ने मधुमालती के साथ महल में प्रवेश किया। मनोहर माता- पिता के चरणों में गिर पड़ा।

ग्रंथ का समापन करता हुआ कवि कहता है कि मात्र प्रयास करने से ही कोई अमर नहीं होता। मृत्यु उसे नहीं मारती जो एक बार प्रेम-मार्ग पर चलकर मरता है। जिसने प्रेमाग्नि का ताप सहन कर लिया, वही विश्व में मृत्यु से बच सकता है। जो एक बार प्रेम की शरण में पहुँच जाता है, वह किसी के मारने से नहीं मरता। जैसे मृत्यु-फल अमृत के तुल्य होता है, उसकी काया अमर हो जाती है। हे जीव! यदि तू मृत्यु से भयभीत है, तो प्रेम की शरण में जाने से यह भय दूर हो जाएगा। जहाँ अमृत की शोभा है, वह स्थल प्रेम की शरणस्थली है। जब तक काव्य रूपी कलेवर है, तब तक जगत् में प्रेमी का नाम भी अमर है:

औ अंब्रित जहें छाजे, असो सुभर सो ठाउं।

कविता-गात जवहिं लहि, रहइ जगत महं नाउं ।।

संदर्भ

1. मधुमालती (प्रस्तावना): सं. माता प्रसाद गुप्त

2. वही: छंद 539

चतुर्थ अध्याय

प्रेम : स्वरूप-विवेचन

'प्रेम' की व्युत्पत्ति

संस्कृत शब्द 'प्रेमन्' से 'प्रेम' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है। 'प्री' धातु में 'मनिन' प्रत्यय लगाने से प्रेमन शब्द निर्मित हुआ है। 'प्री' का अभिप्रेतार्थ है-प्रसन्न करना, आनन्द लेना या आनन्दित होना।' इस व्युत्पत्तिमूलक अर्थ के अनुसार सौहार्द्र, स्नेह और हर्ष के संचार की अभिव्यक्ति करने वाले शब्द का नाम 'प्रेम' है।"

'प्रेम' की एक अन्य व्युत्पत्ति भी है। इसके अनुसार संस्कृत के 'प्रिय' शब्द में 'इमनिच' प्रत्यय लगने से 'प्र' आदेशपूर्वक सम्पन्न हुआ, तदनुसार प्रिय का भाव या प्रिय होना ही प्रेम है। प्रेम किसी के मन में होने वाला वह कोमल भाव है जो किसी ऐसे भाव, वस्तु, बात या व्यक्ति के प्रति होता है, जिसे वह बहुत अच्छा प्रशंसनीय तथा सुखद समझता है अथवा जिसके साथ वह अपना घनिष्ठ संबंध बनाए रखना चाहता है। अपने विशुद्ध और विस्तृत रूप में यह ईश्वरी तत्त्व या ईश्वरता का व्यक्त रूप माना जाता है और सदा स्वार्थ-रहित तथा दूसरों के कल्याण के भावों से ओत-प्रोत रहता है। प्रेम तत्त्व में दया व सहानुभूति प्रचुर मात्रा में होती है।

विभिन्न विद्वानों ने प्रेम को अपने-अपने दृष्टिकोण से देखने व जानने का प्रयास किया है। हिन्दी शब्दसागर के अनुसार "प्रेम वह भाव है जिसके अनुसार किसी व्यक्ति या वस्तु आदि के संबंध में यह इच्छा होती है कि वह सदा हमारे पास या हमारे साथ रहे, उसकी वृद्धि, उन्नति या हित हो अथवा हम उसका भोग करें।"

अमरकोशकार ने अप्रियता के अभाव, हार्दिक प्रीति और स्नेह भाव को प्रेम की संज्ञा दी है। उपर्युक्त परिभाषाओं से एक तथ्य तो स्पष्ट है कि प्रेम एक आंतरिक तत्त्व

है और इसका संबंध मनुष्य के अंतःकरण से है। मानव-मन में उद्भूत इस द्रवित, तरल एवं सरस अनुभूति को विभिन्न रूपों में साकार होते देखा जा सकता है। यह अनुभूति कभी किसी के प्रति गहन वात्सल्य, लगाव, अनुशंसात्मक श्रद्धा के रूप में व्यक्त होती है और कभी दूसरों के प्रति शुभाकांक्षा की द्योतक बनकर प्रकट होती है।

प्रेम के उपर्युक्त विवेचन से तीन अर्थनाद ध्वनित होते हैं, प्रथम, प्रेम सर्वथा आंतरिक अनुभूति है। द्वितीय, यह अनुभूति आह्लाद कारक, तरल, मधुर और शाश्वत है तथा तृतीया, एक्य की उत्कट भावना तथा तादात्म्य की तीव्र अभिलाषा इसके अनुभूतिजन्य कारण और परिणाम दोनों में विद्यमान रहती है। इन्हीं तत्त्वों पर सृष्टि का संचालन अवलंबित है और यही जीवन के आधारभूत रूप हैं। इसीलिए रूमी प्रेम की परिभाषा को जीवन की परिभाषा के ही समान दुष्कर समझते हैं।

प्रेम के लक्षण

प्रेम अत्यंत व्यापक भाव भरा शब्द है, जिसे परिभाषाओं के संकीर्ण शब्दों में आबद्ध नहीं किया जा सकता। जीवन की परिभाषा की भाँति प्रेम की परिभाषा भी अत्यंत कठिन है। दोनों के कारण समान हैं।' प्रेम को गूंगे के आस्वाद की भाँति अनिर्वचनीय कहा गया है।"

प्रेम अवर्णनीय है। प्रेम की अवर्णनीयता के कारण ही मात्र इस अनुभवगम्य तत्त्व को कुछ लोग साश्चर्य देखते हैं, कुछ साश्चर्य श्रवण करते हैं परंतु इसे समझ नहीं पाते।" यह ममत्व का जन्मदाता तथा हृदय को कोमल बनाने वाला तत्त्व है, भाव है।

संस्कृत के विख्यात नाटककार भवभूति हृदय की उस स्थिति को प्रेम कहते हैं, जिसमें सुख-दुख की सभी अवस्थाओं में समानुभव हो और हृदय को विश्राम की अनुभूति हो।" कालिदास प्रेम का लोकोत्तर महत्त्व स्वीकार करते हुए उसे जन्म-जन्मांतरों का व्यापार मानते हैं। राजशेखर का मत है कि प्रेम वह भाव है, जिसके उत्पन्न होने से दो व्यक्तियों का मन, विचार, संदेह आदि भावों से शून्य हो जाता है और आनन्द का सोता बहने लगता है।" शूद्रक प्रेम को गुणों से स्वयं उत्पन्न मानते हैं, जिसे हठात् पैदा नहीं किया जा सकता।"

आत्मा और बुद्धि दोनों का प्रेमानुभूति में समन्वय कर विख्यात कामशास्त्री वात्स्यायन इसके दिव्य पक्ष की विशिष्टता इंगित करते हुए कहते हैं कि- "बुद्धि के योग से पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मनोनुकूल उपकरणों का प्रज्ञानन्द ही प्रेम है। इसकी

अनुभूति बुद्धि तथा इंद्रियों के संपर्क से आत्मा को होती है।"

मैथिली कवि विद्यापति की दृष्टि में संपूर्ण सृष्टि में एकमात्र सार वस्तु है-तिल भर संगम और जीवन पर्यन्त प्रेम का आधिपत्य है।"

कबीर प्रेम की स्थिरता को स्वीकार करते हैं। जो प्रेम पल में होता है, पल में उतर जाता है वह प्रेम नहीं है:

छिनहिं चढ़े छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावे सोय ।।

रीतिकालीन कवि घनानन्द भी प्रेम में निश्छलता स्वीकार करते हैं:

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ सांचे चलें तजि आपनपौ, अझकैं कपटी जे निसांक नहीं ।।

कवि-कुल-चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास प्रेम का अस्तित्व मात्र मानसिक धरातल पर ही स्वीकार करते हैं:

तत्त्व प्रेम करु मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा ।"

प्रेम के लक्षण बताते हुए रसखान लिखते हैं कि प्रेम वह विलक्षण तत्त्व है, जो रूप, गुण, यौवन, धन, स्वार्थादि प्रलोभनों से शून्य, अगम्य, अमित और अनुपम है। यह एकांतिक, अकारण और एकरस होता है :

बिन गुन जीवन रूप धन विन स्वारय हित लोनि।
सुद्ध कामना से रहित प्रेम सकल रसखानि ।।

भावनात्मक निबंधों के एकमात्र सर्जक आचार्य रामचंद्र शुक्ल किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति लोभ को प्रेम मानते हुए लिखते हैं कि "लोभ सामान्योन्मुख होता है तथा प्रेम विशेषोन्मुख होता है। किसी विशेष वस्तु पर इस प्रकार मुग्ध रहना कि उससे कितनी अच्छी-अच्छी वस्तुओं के सामने आने पर भी उस विशेष वस्तु से प्रवृत्ति न हटे, वही प्रेम है। इतर शब्दों में-विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लोभ जो सात्विक रूप प्राप्त करता है, उसे प्रीति या प्रेम कहते हैं।'

विख्यात लेखक डॉ. भगवानदास का मत है कि- "Love is the desire for Union with the object looked and therefore ever vends to bring subjects and objects to one love in order that they may unite and become one" अर्थात् एक व्यक्ति के रूप, गुण-स्वभाव आदि के कारण जब दूसरे व्यक्ति के हृदय में कोई सुखदायक अनुभूति जब परिपक्व मनोवृत्ति के रूप में परिवर्तित हो जाती है और वह पर हितार्थ की कामना से संयुक्त होता है, तब वह 'प्रेम' का रूप ग्रहण करता है। इस प्रकार की चित्तवृत्ति में प्रेमी की प्रिय से मिलन की उत्कण्ठा तथा ऐक्य-भावना में होना ही संभव है।" यही वृत्ति विस्तार प्राप्त कर

लौकिक से पारलौकिक क्षेत्र तक पहुँचती है। यह विकार रहित वृत्ति प्रेम का सात्विक रूप माना गया है।

प्रेम तत्त्व शाश्वत है। यह देश-काल-जाति-लिंग-उम्र-रंग व तमाम बंधनों से मुक्त है। भारत में हजारों वर्षों से प्रेम-तत्त्व के स्वरूप पर ऋषि-मुनि और तत्त्ववेत्ता चिंतन करते आ रहे हैं। विदेशी विद्वानों ने भी प्रेम के लौकिक और पारलौकिक स्वरूप को विश्लेषित किया है। भारतीय जनमानस में विदेशी प्रेम-दृष्टि के संबंध में प्रायः यह धारणा रहती है कि पाश्चात्य संस्कृति भोगवाद की समर्थक है और इसीलिए इनकी संस्कृति में प्रेम का वह उदात्त रूप नहीं प्राप्त होता, जो भारतीय संस्कृति में व्याख्यायित है। परन्तु यह दृष्टिकोण एकांगी है। पाश्चात्य विचारकों एवं मनीषियों ने भी प्रेम के उदात्त स्वरूप को मान्यता प्रदान की है। प्रेम का स्वरूप इतना उदात्त है कि वह प्रत्येक सुंदर को सुंदरतर और सुंदरतर को सुंदरतम बना देता है। यद्यपि सृष्टि में अक्षय सौंदर्य है और प्रेम स्वयं ही एक सुंदर तत्त्व है- "Love betters what is best." 20

अब वड्र्सवर्थ उपर्युक्त प्रकार से प्रेम और सौंदर्य के अंतर्संबंधों को उद्घाटित करते हैं, तो विल ड्यूरेंड् दार्शनिकता का पुट देते हुए कहते हैं कि विश्व में प्रेम को छोड़कर सब कुछ नाशवान है। वे अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि प्रेम ऐसी माधुर्य प्रदायक ऊष्मा है, जो जीवन को तरल प्रवाह प्रदान करती है, जिससे हृदय एक अनिर्वचनीय और अकथनीय आंतरिक तृप्ति व संतुष्टि से परिपूर्ण हो उठता है। यह तृप्ति व संतुष्टि अपने आप में परिपूर्ण है। यह किसी प्रतिफल की कामना नहीं करती - "Love worms the heart with unspeakable silance, even more when it is given that what it is received. All other things are furtile, let us cherish it". विख्यात पाश्चात्य नाटककार शेक्सपियर प्रेम को जानने का माध्यम हृदय को मानते हैं, नेत्रों को नहीं- "Love looks not with the eyes, but with the mind."2" यूनानी दार्शनिक प्लेटो प्रेम को हृदय का प्रकाश मानते हैं, जिसके अभाव में व्यक्ति का जीवन अंधकार से युक्त होता है। नीत्से भी प्लेटो के मत का समर्थन करते हुए कहते हैं कि प्रेम ही वह तत्त्व है, जो व्यक्ति के आंतरिक नेत्रों को खोलता है।

प्रेम का स्वरूप

देशी-विदेशी मनीषियों ने प्रेम के स्वरूप को विश्लेषित करते हुए इसे शरीरी (लौकिक) और अशरीरी (पारलौकिक) दो भागों में विभक्त किया है। इनमें से वासनारहित या अशरीरी प्रेम को परम पावन, उत्कृष्ट, ईश्वरीय स्वरूप तथा लोकोत्तर

आह्लादकारक माना गया है। इसका अनुभव अत्यंत सूक्ष्म, तरल एवं कोमल है। नारद, प्रेम के स्वरूप को विश्लेषित करते हुए सूत्र देते हैं कि-प्रेम का स्वरूप अत्यंत सूक्ष्म अनुभवजन्य है- 'सूक्ष्मतरं अनुभव रूपम्।" जब प्रेम का उदय होता है, तब चित्त में तन्मयता का साक्षात्कार होता है। यह तन्मयता प्रेमाधार के प्रति होती है। प्रेमी के हृदय में प्रेम-पात्र के प्रति नितांत एकनिष्ठता, आशा और विश्वास का भाव तरंगायित होता है।

प्रेम जैसे सर्वव्यापक, सार्वकालिक सार्वजनिक और शाश्वत तत्त्व की उत्पत्ति कैसे होती है, इस प्रश्न पर हजारों वर्षों से चिंतक और मनीषी विचार कर रहे हैं, परन्तु अब भी उनके निष्कर्ष अपूर्ण और अधूरे-से लगते हैं। जब से विज्ञान ने विश्व पर और प्रकृति पर अपना साम्राज्य स्थापित किया है, तब से वैज्ञानिक भी प्रेम के कारणों के अनुसंधान में जुटे हुए हैं। परन्तु 'प्रेम' ऐसा तत्त्व नहीं है, जिसे रसायन या भौतिकशास्त्र की प्रयोगशालाओं में विभिन्न घटकों के योग से बनाया जा सके। प्रेम में प्रेमी अपने प्रेमपात्र की ओर आकर्षित क्यों होता है? प्रश्न यही विचारणीय है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत है कि "प्रेम की उत्पत्ति रूप और साहचर्य से होती है।" नारद भक्ति सूत्र के अनुसार- "इस अतीन्द्रिय, पावन एवं विराट अनुभूति की अभिव्यक्ति वैसे तो स्थूल रूप से चित्त व इंद्रियों द्वारा होती है; परन्तु इसका मूल उद्गम आत्मा है। प्रेम की अनुभूति मात्र से प्राणी प्रकृतिजन्य पाशों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है और पवित्र होकर निजात्म के आनन्दमय स्वरूप में लय हो जाता है, वह देह और चित्त की सीमा को लांघ कर सीमातीत हो जाता है।"25

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मा ही प्रेम का उत्पत्ति स्थल है। इसका स्थूल जगत् में प्रकाशन इंद्रियों एवं चित्त के माध्यम से होता है। अब चूँकि चित्तवृत्तियाँ इंद्रियों की क्रियाशीलता पर नियंत्रण रखती हैं, अतः प्रेम के पावन और उदात्त स्वरूप की स्थिति चित्त की स्थिति पर आधारित होती है। इस दृष्टि से प्रेम सत्य है, सुंदर है और शिव है, क्योंकि यही आत्मा के मूल गुण हैं और प्रेम का यही वासनारहित निर्दोष-निर्मल स्वरूप चिरंतन है, शाश्वत है "Love is God" प्रेम के इसी रूप को ईश्वर की संज्ञा दी गई है। प्रेम का यही रूप पावन है और पूज्य है। प्रेम का यही रूप आदरणीय है। इस पावन प्रेम की गति को काल का प्रवाह भी नहीं मोड़ सकता। इस प्रेम में विश्व कल्याण की भावना निहित होती है। प्रेम की प्रेरक-शक्ति से व्यक्ति का स्वार्थ-भाव विनष्ट हो जाता है और वह परमार्थ पथ का पथिक बन जाता है। प्रेम, व्यक्ति को उसके पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक दायित्वों का बोध कराता है। प्रेम विश्वबंधुत्व और मानवता की भावना पुष्ट करता है। प्रेम का रेशमी बंधन

हृदय से हृदय को, मस्तिष्क से मस्तिष्क को तथा आत्मा से आत्मा को बाँधता है। प्रेम की शक्ति समस्त दुखों को पराभूत कर देती है और मनुष्य में आत्मबल भर देती है। प्रेम, व्यक्ति में नवचेतना नवोन्मेष और नवजीवन का संचार करता है। प्रेम अक्षय ऊर्जा का स्रोत है, जिससे व्यक्ति स्फूर्ति प्राप्त करता है और नवोत्साह के सरोवर में अवगाहन कर शांति और शीतलता प्राप्त करता है। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ से विरोध और विपरीत भावनाएँ स्वतः ही नष्ट हो जाती हैं। प्रेम सौंदर्य की सृष्टि करता है। प्रेम की दृष्टि वेदना और करुणा से समन्वित होकर कल्याण पथ पर अग्रसर होती है। प्रेम तत्त्व अनुपम है, अद्भुत् है और आह्लादकारी है।

प्रेम के गुण

प्रेम की प्रकृति के आधार पर मनीषियों ने गहन विचार-मंथन किया और उसके आठ गुण निर्धारित किये। ये गुण हैं-उल्लास, ममता, विश्रंभ, अभिमान, द्रवीभाव, अतिशय अभिलाषा, नवनवत्व की भावना और उन्माद। इन आठ गुणों का स्वरूप निम्नलिखित है-

1. उल्लास: यह वह मानसिक भाव है, जो प्रेमी या प्रिय वस्तु को प्राप्त करने की प्रत्याशा में अथवा प्राप्त करने के प्रतिदानस्वरूप आता है। इसके प्रभाव के परिणामस्वरूप प्रेम के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं और व्यक्तियों में आसक्ति विनष्ट हो जाती है।

2. ममता: प्रेमाप्रीति से उत्पन्न भाव का नाम ममता है। इस गुण के उत्पन्न होने के परिणामस्वरूप प्रीति अत्यंत दृढ़ हो जाती है। प्रेम-समृद्धि का कारण ममता का अतिशय है।

3. विश्रभ: प्रेम में विश्वसनीयता का होना अनिवार्य है। विश्रभ गुण होने पर प्रथम, संदेह का शमन होता है। दूसरे यदि संदेहात्मक परिवेश का निर्माण होता भी है, तब भी प्रेमी के हृदय में संदेह के अंकुर नहीं फूटते।

4. अभिमान: प्रिय के गुणों से प्रेमी अभिभूत होता है और उसे इन गुणों पर अभिमान होता है। प्रिय को अधिक प्रिय समझकर उसके प्रति इस प्रकार के प्रणय का प्रदर्शन-जो कुटिलता के आभास से कुछ भिन्न हो जाए, अभिमान या मान है।

5. द्रवीभाव : नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत ने चित्त की द्रवीभूत

अवस्था को 'प्रेम' कहा है, अर्थात्, प्रेम में द्रवीभाव का महत्त्व सर्वोपरि है। इस गुण के उत्पन्न हो जाने पर प्रिय के संबंध के आभास से ही हृदय में सत्त्वोद्रेक हो जाता है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने के पश्चात् प्रिय के दर्शन आदि से ही प्रेमी की 'तृप्ति' नहीं होती। उसके समर्थ होने पर भी उसके अनिष्ट की आशंका प्रेमी के मन में निरंतर बनी रहती है।

6. अतिशय अभिलाषाः प्रेमी के हृदय में जब अभिलाषा इस सीमा तक पहुँच जाती है कि उसे अपने प्रेमी का क्षणिक वियोग भी सह्य नहीं होता और संयोग में भी वियोग की आशंका से दुखी रहता है, तो उस अवस्था को अतिशय अभिलाषा गुण से सम्पन्न माना जाता है।

7. नवनवत्व की भावनाः प्रेम में एक स्थिति ऐसी आती है, जब प्रेमी अपने प्रिय में नित नवीन भावों का अथवा बातों का दर्शन करने लगता है, तब प्रेम की यह दशा प्रेम के नवनवत्व गुण से युक्त होती है।

8. उन्माद : प्रेम में एक स्थिति ऐसी आती है कि प्रेमी अपने प्रिय की चाहत में पागल सा हो जाता है। यह उन्माद की अवस्था ही प्रेम का आठवाँ गुण है। इस गुण के उदय होने पर महाभाव की दशा आती है। इस दशा में संयोग के कल्प निमेष की भाँति और वियोग के निमेष कल्प की भाँति प्रतीत होते हैं। 26

प्रेम के प्रकार

प्रेम का क्षेत्र अत्यंत व्यापक, विशद् और विवादास्पद है। विवादास्पद इसीलिए कि इसके स्थिर स्वरूप का निर्धारण कोई कर नहीं सका है। इसकी थाह कोई पा नहीं सका है। इसीलिए तो कबीर चुनौती देते हैं- "ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।" घनानन्द प्रेम के पंथ को अत्यंत सीधा मानते हैं- "अति सूधो सनेह को मारग है, जहँ नेकु सयानप बाँक नहीं।" तो रसखान इसको पीड़ादायक बताते हैं :

प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस ।

प्रान तरफि निकसै नहीं, केवल चलत उसाँस ।।"

ऐसा विचित्र प्रेम तत्त्व अनेक रूपों में दृश्य-जगत् में परिलक्षित होता है। विभिन्न रूप हैं इसके माँ-बेटे का प्रेम वात्सल्य की सृष्टि करता है। भाई-बहिन का प्रेम स्नेह-सुधा-वर्षण करता है। पति-पत्नी अथवा प्रेमी-प्रेयसी का प्रेम श्रृंगार-सौंदर्य और काम को जन्म देता है। मनीषियों ने प्रेम की इस कोटि को अधम प्रेम की संज्ञा देते हुए इसे वासनाजनित अथवा शरीरी या दैहिक या लौकिक प्रेम कहा है।

प्रेम का स्वरूप अभेद है, परन्तु अध्ययन की दृष्टि से इसे तीन आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। ये आधार हैं-प्रेम के परिमाण के आधार पर, प्रेमालम्बन तथा प्रेम स्वरूप। प्रेम के परिमाण का कोई मापन नहीं किया जा सकता, फिर भी इस आधार पर वर्गीकृत प्रेम को उत्तम, मध्यम और अधम इन तीन उपभागों में वर्गीकृत किया गया है।

प्रेमालंबन के आधार पर प्रेम के वर्गीकरण की अनेक कोटियाँ हो सकती हैं- जाति-प्रेम, मानव-प्रेम, धर्म-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम, पशु-प्रेम, पक्षी प्रेम, विद्या-प्रेम, धन-प्रेम, व्यवसाय- प्रेम, सुरा-प्रेम प्रकृति-प्रेम, संगीत-प्रेम, साहित्य-प्रेम आदि।

स्वरूप के आधार पर प्रेम के दो भेद प्राप्त होते हैं- पार्थिव तथा अपार्थिव प्रेम। पुनः पार्थिव प्रेम के दो भेद किये गये हैं-प्राकृत प्रेम तथा सात्विक प्रेम। पाश्चात्य प्रेमाचार्यों ने इन्हें Natural Love (प्राकृत प्रेम) तथा Platonic Love (सात्विक प्रेम) की संज्ञा दी है।

प्रेम का उपर्युक्त वर्गीकरण मानव-मनोविज्ञान और दर्शन पर आधृत है। सहज मानवीय प्रेम ही प्रकृत प्रेम है। जिसे सामान्यतः वासनात्मक प्रेम कहा जाता है, उसका परिगणन इसी प्रेम के अंतर्गत होता है। इस सुख में शरीर-सुख या दैहिक- आकर्षण जनित सुख का प्राधान्य होता है। दूसरे शब्दों में दो विपरीत लिंगी की सहज प्रीति ही प्रकृत प्रेम है। प्रेम के अमर गायक रसखान के प्रेम-वर्णन में अजीब विरोधाभास है। एक ओर वे वासना रहित सात्विक प्रेम को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं, दूसरी ओर अत्यंत निर्भीक शब्दों में उद्घोषणा करते हैं, कि मन से मन मिलने पर प्रेम नहीं होता। जब तन से तन मिलता है, तभी वास्तविक प्रेम होता है:

दो मन इक होते सुन्यौ, पै वह प्रेम न आहि।

होइ जबै द्वै तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि।।

सात्विक प्रेम में 'दैहिक सुख' को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। इस प्रेम में विशुद्ध आत्मा का संयोग विशुद्ध आत्मा से होता है। जो सहज इंद्रिय जनित सुख है इससे ऊँचा उठा हुआ प्रेम ही आत्मिक प्रेम है, इसी का नाम ईश्वरीय प्रेम है। जहाँ ईश्वरीय प्रेम का प्रादुर्भाव होता है, वहाँ से देह जनित वासना पूर्णतः तिरोहित हो जाती है। जब आत्मा पूर्णतः पावन हो जाती है, तब यही पावन आत्मा रूपी नारी अपने पूर्ण

पुरुष का अर्थात् परमात्मा का सानिध्य प्राप्त करने हेतु व्यग्र हो उठती है, उन्माद की अवस्था में आ जाती है।

प्रेम का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

प्रेम कोई ऐसा तत्त्व नहीं है, जिसे प्रयोगशाला में बनाया जा सके। वैज्ञानिकों को यह प्रश्न मथता रहा है कि अंततः प्रेम क्यों होता है? प्रेम के लिए कौन से कारक जिम्मेवार हैं? प्रेम के आवेग में कौन-कौन से शारीरिक परिवर्तन होते हैं? इससे संबंधित श्री विपिन जैन का आलेख 'प्रेम का रसायन शास्त्र' उद्धृत है :

मस्तिष्क का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा होता है-हायपोथैलेमस । यह कई महत्त्वपूर्ण कार्य करता है, जैसे कि शरीर के तापमान व रक्तचाप का नियंत्रण, निद्रा, भूख, प्यास, हँसी व अन्य संवेदनाओं का नियंत्रण। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस हायपोथैलेमस में एक सेक्स न्यूक्लीयस होता है, जो कि मनुष्य की प्रेम-संवेदनाओं के लिए उत्तरदायी होता है। विभिन्न परिस्थितियों में यह कई रासायनिक पदार्थों का निर्माण करता है, जो कि माँसपेशियों के खिंचाव व हृदय की गति तेज करते हैं और यही सब कुछ तो प्रेम व आकर्षण के लक्षण हैं।

अक्सर यह कहा जाता है कि किसी व्यक्ति की आँखों में देखकर ही यह अंदाज लगाया जा सकता है कि उस व्यक्ति को प्यार हो गया है, क्योंकि सामान्यतः प्रेम में व्यक्ति सपनों के अनोखे संसार में खोया रहता है। यह हालत कुछ उसी तरह की होती है, जब किसी को एम्फीटामीन जैसी दवाइयाँ दी जाती हैं। इसीलिए कई वैज्ञानिकों का यह मानना है कि प्रेम की अवस्था में मस्तिष्क एम्फीटामीन के समान रासायनिक पदार्थ, जैसे कि फिनाइल इथाइल एमीन का निर्माण करता है, जो कि मदहोशी की अवस्था निर्मित करते हैं।

प्रेम मनुष्य जीवन का एक अभिन्न अंग है और हर व्यक्ति सच्चे प्रेम की आवश्यकता महसूस करता है। इसी कारण कई मनोवैज्ञानिकों का यह मत है कि वस्तुतः प्रेम एक व्यसन या एडीक्शन है और यह एडीक्शन, ओपीयाड्स जैसे रासायनिकों के कारण होता है। बाल्यावस्था में माता-पिता के सामीप्य के कारण मस्तिष्क ओपीयाड्स का निर्माण करता है, जो कि शांति व स्थिरता प्रदान करते हैं और व्याकुलता कम करते हैं। एक तरह से वे सुरक्षात्मक माहौल का निर्माण करते हैं। बड़े होने पर हम इसी तरह के संबंधों की खोज करते हैं और यही प्रेम संबंधों का मूल कारण है।

अक्सर यह देखा जाता है कि किसी को एक व्यक्ति अत्यधिक आकर्षित करता है और उसके यह विचार किसी दूसरे व्यक्ति से पूर्णतः भिन्न होते हैं। इसका

कारण यह है कि प्रत्येक के मस्तिष्क में एक प्रेम का नक्शा होता है, जो कि उसके आकर्षण व भावी संबंधों व आकांक्षाओं के लिए उत्तरदायी होता है। यह नक्शा उसके बचपन से ही खिंचा होता है और उसके माता-पिता रिश्तेदारों और आस-पास के वातावरण से प्रभावित हुआ होता है। इस नक्शे में सीमाएँ विशाल होती हैं और सामान्यतः भावी प्रेमी या प्रेमिका के रूप, विचार व योग्यता से संबंधित होती हैं। यही कारण है कि समान विचार व योग्यता रखने वाले प्रेमी, अच्छे युगल साबित होते हैं।"

प्रेम का अध्यात्म, लौकिक और वैज्ञानिक पक्ष जान लेने के पश्चात् इसके मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषणात्मक पक्ष को समझना भी समीचीन होगा। विख्यात मनोविश्लेषक और मनोविज्ञानी सिग्मंड फ्रॉयड प्रेम को व्याख्यायित करते हुए इसके तीन प्रकार मानते हैं-प्रथम प्रकार में सहज प्रेम या मूल प्रवृत्तिमूलक प्रेम होता है। इस प्रेम की क्रिया पशुवत् होती है। किसी के प्रति आकर्षणबद्ध होकर अथवा अभिरुचि के अनुसार किया जाने वाला प्रेम मनुष्योचित प्रेम है। इस आकर्षणबद्धता अथवा अभिरुचि के विपरीत किया गया प्रेम निःस्वार्थ प्रेम है, जो सत्पुरुषों व संतों में ही पाया जाता है। मानवीय प्रेम में हम प्रेम करने के पूर्व प्रेमपात्र को जानने का प्रयास करते हैं, परन्तु ईश्वर को जानने के लिए पहली शर्त होती है-ईश्वर से प्रेम करना।

एक और विश्वविख्यात मनोविश्लेषक एरिक फ्रॉम का मत है कि जैसे जीवन जीना एक कला है, उसी तरह प्रेम एक कला है, जिसे संगीत, चित्रकारी, बढ़ईगिरी, चिकित्सा या इंजीनियरी की तरह ही सीखा जा सकता है। कला सीखने के लिए सिद्धांत और प्रयोग का जितना महत्त्व है, उतनी ही महत्त्वपूर्ण है उसकी चिंता या संलग्नता। सीखने वाले के समक्ष संबद्ध कला से अधिक महत्त्वपूर्ण विश्व में कुछ नहीं होता। प्रेम की असफलता का कारण यही है कि प्रारंभिक अवस्था के बाद उसे महत्त्वहीन माना जाने लगता है। धन, प्रतिष्ठा, शक्ति, सफलता आदि को पाने में सारी ऊर्जा व्यय कर दी जाती है और लगभग कोई भी प्रेम करने की कला नहीं सीखता। प्रेम के संबंध में कोई भी सिद्धांत मानव अस्तित्व के सिद्धांत के साथ प्रारंभ होना चाहिए। पशुओं में प्रेम या प्रेम का पर्याय जो हम देखते हैं, वह लगाव मुख्यतः मूल प्रवृत्तिगत उपकरण का अंश होता है।"

परन्तु सच तो यह है कि मनोविज्ञानी भी मानवीय प्रेम की परिधि में बँधकर रह गये। अलौकिक या अपार्थिव प्रेम का विश्लेषण करना उनकी सीमा में है ही नहीं। विख्यात दार्शनिक जॉन ब्राउन भी कहते हैं कि "प्यार में कभी विश्लेषण नहीं होता।" विश्लेषण सीमाओं में आबद्ध वस्तुओं का होता है। प्रेम का स्वरूप सीमातीत है। प्रत्येक दृष्टि से प्रेम के स्वरूप पर प्रकाश डालने के पश्चात् पुनः उसकी

आध्यात्मिक अभिव्यक्ति करें तो कह सकते हैं-इस 'ढाई आखर' की अद्भुत प्रकृति है- "प्रेम गली अति सांकरी जा में दो न समाय।" अर्थात् प्रेम एकनिष्ठता चाहता है। जहाँ एकनिष्ठता होती है, वहाँ समर्पण भी होता है। तात्पर्य यह कि सात्विक प्रेम में एकनिष्ठता और समर्पण स्थाई भाव होते हैं। कबीर की स्पष्ट उद्घोषणा है कि तू एक बार नैनों के मार्ग से हृदय में आ जा। हे प्रियतम ! तेरे आते ही मैं आँखें बंद कर लूँगी। फिर मैं न किसी को देखूँगी और न तुझे किसी और को देखने दूँगी :

नैननि अंतर आव तू, नैन झाँपि तोहि लेऊँ।

न में देखूँ और को, न तोहि देखन देऊँ ।।

यह प्रेम की चरम सीमा है। प्रेम में एकाकार के पश्चात् फिर कुछ भी नहीं रह जाता।

सूफ़ियों की प्रेम-साधना

सूफ़ियों की प्रेम-साधना पर दृष्टिपात करने के पूर्व यह निर्दिष्ट कर देना आवश्यक है कि सूफी कवियों ने भारतीय प्रेमाख्यानकों को अपने काव्य का आधार बनाया अवश्य है; पर उसके केंद्र में उनके अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन है। भारतीय दर्शन में और भारतीय अभिव्यंजना में आत्मा, परमात्मा का संबंध स्त्री- पुरुष, पत्नी-पति अथवा प्रेयसी-प्रेमी का स्वीकार किया गया है। ठीक इसके विपरीत सूफ़ी कवियों की अभिव्यंजना पद्धति है। सूफ़ी दर्शन में परमात्मा को स्त्री रूप और जीवात्मा को नर-रूप माना गया है। भारतीय साधना-पद्धति में नारी (आत्मा) पुरुष (परमात्मा) की प्राप्ति हेतु सचेष्ट होती है। उसे प्राप्त करने के लिए वह विरह में जलती है, विलाप करती है और उन्माद की अवस्था में आ जाती है। कबीर आदि निर्गुण संत कवियों की साधना भारतीय परम्परा का पोषण करती है। कबीर की विरहिणी अपने प्रेमी (ईश्वर) की प्राप्ति हेतु तड़पती है, गिरती है, उठती है :

बिरहिन उठि उठि भुइं परै दरसन कारन राम।

सूफ़ी साधना-पद्धति में ईश्वर की कल्पना नारी के रूप में की गई है और नारी-सौंदर्य के दिव्य गुणों से भूषित होती है। यह सौंदर्य, आकर्षण का कारण होता है और प्रेम का उत्पादक होता है। सूफी कवियों ने अपने काव्य में दाम्पत्य प्रेम के आविर्भाव वर्णन करने की जिस प्रणाली का वरण किया है, वह 'पूर्वराग' है। पूर्वराग में नायक या नायिका के गुण श्रवण, चित्रदर्शन, स्वप्नदर्शन आदि से चित्त में राग उत्पन्न होता है, जो उन्हें मिलन के लिए प्रेरित करता है। चांदायन, मृगावती, पद्मावत और मधुमालती जैसे प्रेमाख्यानक काव्यों में 'पूर्वराग' से ही 'प्रेम' को प्रकट कराया गया है। 'चांदायन' में नायिका चंदा के प्रति नायक राजा रूपचंद को आकृष्ट

करने में 'बाजिर' माध्यम बनता है। यह अलग बात है कि बाजिर स्वयं चंदा के सौंदर्य पर अभिभूत है। रूपचंद द्वारा चन्दा के पिता सहदेव पर आक्रमण करने के फलस्वरूप सहदेव सहायता के लिए लौरिक को आमंत्रित करता है। लौरिक चन्दा की ओर आकृष्ट होता है और चन्दा लौरिक पर। चूँकि चांदायन सूफ़ी प्रेमाख्यानों की श्रृंखला की प्रथम कृति है अतः इसमें वे सूफ़ी सिद्धांत पूर्णता प्राप्त नहीं कर सके हैं, जो इसके परवर्ती ग्रंथ।

'मृगावती' में नायक-नायिका के मध्य प्रेम उद्दीप्त करने वाला कोई माध्यम नहीं है। राजकुँवर स्वयं मृगी के रूप में विचरण करती मृगावती के सौंदर्य पर आसक्त हो जाता है।

जायसी के 'पद्मावत' से इस माध्यम का प्रारभ होता है। यहाँ 'हीरामन' राजा रतनसेन को पद्मावती के सौंदर्य की ओर आकृष्ट करने में सहायक होता है।

'मधुमालती' के नायक-नायिका मनोहर-मधुमालती तथा सहनायक-नायिका ताराचन्द-पेमा के प्रेम में 'पूर्वराग' का भी कोई माध्यम नहीं है। इन्हें अपने प्रेमपात्रों के दर्शन प्रत्यक्ष होते हैं। हाँ, मनोहर-मधुमालती के प्रेम-मिलन में अप्सराओं को 'माध्यम' के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

'चित्रावली' का नायक कुँवर का चित्रावली से प्रेम-साक्षात्कार चित्रावली की चित्रसारी में चित्र के द्वारा होता है। पर, चित्रावली की चित्रसारी तक जाने में माध्यम मढ़ी का देव बनता है।

'ज्ञानदीप' में नायक ज्ञानदीप और नायिका देवयानी के प्रेमाकर्षण का माध्यम देवयानी की सखी सुरज्ञानी बनती है। सुरज्ञानी ही ज्ञानदीप के सौंदर्य का वर्णन देवयानी से करती है, जिसे सुनकर नायिका के हृदय में प्रेमाग्नि प्रज्ज्वलित होने लगती है।

उपर्युक्त प्रेमाख्यानक ग्रंथों में प्रेम के माध्यम का अंतर स्पष्ट परिलक्षित होता है। चांदायन और मृगावती में प्रेमी और प्रेमपात्र का प्रेम बिना किसी माध्यम के होता है। पद्मावत और ज्ञानदीप में माध्यम तोता और सखी है तथा मधुमालती और चित्रावली में अप्सराओं और देव द्वारा प्रेमपात्रों को मिलाया जाता है। यह तथ्य सिद्ध करता है कि समस्त सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में तत्त्वतः विभेद है। यह विभेद उनकी विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओं के सिद्धांतों के कारण है। इससे एक तथ्य और उभरकर आता है कि सूफ़ी कवियों के प्रेमाख्यान भले ही एक ही प्रकार की लीक पर चले हों, परन्तु उन सबमें पर्याप्त मौलिकता है।

सूफ़ी कवियों ने अपनी साधना के माध्यम के रूप में जिस प्रेम का चयन किया है, वह लौकिक के द्वारा अलौकिक तक पहुँचता है। प्रेम प्रायः लौकिक होता

है, परन्तु इसका संबंध ब्रह्म, शून्य, खुदा, पैगम्बरों आदि से जोड़कर जब देखा जाता है, तब उसे अलौकिक प्रेम की संज्ञा दी जाती है। यह अलौकिक प्रेम व्यक्ति को उसके किसी इष्ट के साथ सम्बद्ध कर देता है और उसका आश्रय प्रायः कल्पना लोक का होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि "मनुष्य के जितने अंतर्वैयक्तिक संबंध हो सकते हैं-माता-पिता, मित्र, भाई, पुत्र, पति-पत्नी, स्वामी-सेवक, दास-दासी इत्यादि उन सभी संबंधों के रूपों में उसकी कामना की जा सकती है, परन्तु सबसे शक्तिशाली और आकर्षक संबंध प्रिया-प्रिय संबंध है। व्यक्त जगत् में प्रकृति और पुरुष का या शिव और शक्ति का या प्रज्ञा और उपाय का मिश्रण ही दृष्टिगोचर हो रहा है। इसीलिए व्यक्त जगत् में विशुद्ध स्त्री या विशुद्ध पुरुष है ही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति में यह तत्त्व एकमेव होकर गुंथे हुए हैं। मात्रा की कमी और वंशों के कारण व्यक्त जगत् में स्त्री और पुरुष रूप में अभिव्यक्त होती है। जिसमें शक्ति तत्त्व अधिक होता है, वह पुरुष रूप में प्रकट होता है। जो बात व्यष्टि रूप में सत्य है, वही समष्टि रूप में भी। समष्टि रूप में व्यक्त जगत् शिव और शक्ति का सम्मिलन रूप है। वही अर्द्धनारीश्वर का रूप है और उसे ही बौद्ध साधकों ने युगनन्द के रूप में देखा है।"31

सूफ़ी साधकों ने इन्हीं संबंधों को इश्क मिज़ाज़ी और इश्क हक़ीक़ी के नाम से व्यक्त किया है। सूफ़ी-साधना के मूल में केवल प्रेमी ही है। वह लौकिक होते हुए भी किसी न किसी रूप में अलौकिकता से मंडित होता है। यही प्रेम सूफ़ी साधना की प्राण शक्ति है :

ग़र हक़ीक़ी इश्क चाहे कर मिज़ाजी इश्क तो,

उसमें कोई क्या चढ़े, जीना न हो जिस बाम का।

अर्थात् वासना जनित लौकिक प्रेम ही वह सीढ़ी है, जिसकी सहायता से मनुष्य अलौकिक अथवा आध्यात्मिक प्रेम की ऊँची छत पर जा सकता है।"

मीर हसन ने 'मौजुल्आरफीन' नामक पुस्तक में अपनी कथा का उपसंहार करते हुए सूफ़ी प्रेमवाद को इस प्रकार स्पष्ट किया है :

जब मिज़ाज़ी का न हो यारो बयां,
फिर हकीकत किस तरह होवे अयां।
गो मसल यह है मिज़ाज़ी ऐ अजीज,
पर हकीकत को यहीं से कर तमीज।
तुझको इस आलम की है गर आरजू,
दीनों दुनिया को उठा रख एक सूं।

सूफ़ी प्रेम-साधना में बुद्धि-तत्त्व को कोई स्थान नहीं है। बुद्धि-तत्त्व तर्क को

पोषित करता है, हृदय-पक्ष प्रेम का पोषण करता है। प्रेम धारण करने के मार्ग में बुद्धि-तत्त्व अवरोध उत्पन्न करता है। सूफी संत ख्वांजा मुइनुद्दीन चिश्ती भी बुद्धि को छोड़कर हृदय पक्ष की प्रधानता पर चल देते हैं। उनका मत है कि "अक्ल की आँख से दोस्त का हुस्न न देख, तू लैला के हुस्न को मजनूं की आँख से देख" :

मुईन व चश्मे ख़िरद हुस्ने दोस्त न नुमायद।

बबीं बदीदये मजनू जमाले लैला रा।"

सूफ़ियों ने अपनी प्रेम-साधना की अभिव्यक्ति के लिए सांसारिक काम-उपादानों का आश्रय तो ग्रहण किया ही, उन वस्तुओं को भी माध्यम बनाया, जिनका प्रयोग तो क्या, स्पर्श करना भी इस्लाम में निषेध है। शराब, जाम, साक़ी, हाला, प्याला ऐसे ही प्रतीक हैं, जिनका प्रयोग अलौकिक सत्ता के प्रेम-नशे के प्रदर्शन के लिए किया गया है। यद्यपि इस प्रकार की प्रवृत्ति फ़ारसी साहित्य में पर्याप्त रूप में उपलब्ध है। डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय का मत है कि- "सूफ़ी दर्शन में ईश्वर को प्रेमास्पद स्वीकार किया गया है। उससे मिलन का स्वप्न देखना और उसकी सत्ता में अपने को फना कर देना सूफ़ी-साधना का चरम लक्ष्य है। इसके लिए साधन प्रेम है। सूफ़ी साहित्य में ईश्वरीय प्रेम को प्रकट करने के लिए सांसारिक प्रेम की भाषा भी अपनाई गई है। इस पद्धति को सुप्रसिद्ध दार्शनिक इब्नुल अरवी ने तर्जुमानुल-अस्वाक़ में भी अपनाया है। सनाई, फरीदुद्दीन अत्तार, रूमी, इराकी, अमीर खुसरो, सादी, हाफ़िज तथा जामी लौकिक संकेतों का सहारा लेते हैं। इनके काव्य में बार-बार रुख (कपोल), जुल्फ, खाल (तिल) खत, चश्म, अब्र (भौंह), लब (ओष्ठ), बुत, शराब, जाम, साक़ी के प्रतीक लिए गए हैं। कुछ सूफ़ी कवियों को राजाश्रय मिला था। अतः उन्हें ऐसे रूपक जानबूझकर लेने पड़े, जिनसे एक ओर वे ईश्वरीय सौंदर्य की ओर संकेत कर सकें, तो दूसरी ओर सांसारिक प्रेमिका की ओर भी इशारा कर सकें। इससे सूफ़ी काव्य में प्रेम का वास्तविक रूप कभी-कभी अस्पष्ट सा रह जाता है। 35

राजाश्रय प्राप्त सूफ़ी कवियों के साथ जो स्थिति निर्मित हुई थी, लगभग वही स्थिति हिन्दी- साहित्य के रीतिकालीन कवियों के साथ निर्मित हुई। परन्तु रीतिकालीन श्रृंगारी कवियों ने इस स्थिति को अत्यंत स्पष्टता और निर्भयता के साथ स्वीकार कर उद्घोष किया कि :

आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई,

न तु राधिक-कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

इश्क मिज़ाज़ी और इश्क हक़ीक़ी

मिजाज़ हक़ीक़त का सेतु है। सूफ़ी यह मानते हैं कि यदि इश्क न होता, तो

इंतजाम आलमें सूरत न पकड़ता। इश्क के बिना जिंदगी बवाल है, इश्क को दिल दे देना कमाल है। इश्क बनाता है, इश्क जलाता है। दुनिया में जो कुछ है, इश्क का जलवा है। आग इश्क की गर्मी, हवा इश्क की बेचैनी है। जिंदगी इश्क की होशियारी है, रात इश्क की नींद है, दिन इश्क का जागना है। मुस्लिम इश्क का जमाल है, काफिर इश्क का जलाल है। नेकी इश्क की कुदरत है, गुनाह इश्क से दूरी है। विहिश्त इश्क का शौक है, दोजख इश्क का खौफ है।"

वास्तविकता भी यही है कि इश्क मिज़ाज़ी के बिना सूफ़ी साधक इश्क-हक़ीक़ी की कल्पना भी नहीं कर सके हैं। जामी का विचार है कि प्रेम ही व्यक्ति को उसके 'स्व' से मुक्त कर सकता है। युवावस्था में मन का सांसारिक प्रेम की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक है। कालांतर में यही सहज सांसारिक प्रेम अलौकिक प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। जामी कहता है कि इस प्रेम-रस को आकण्ठ पियो। इतना पियो, कि होठों को सर्वाधिक विशुद्ध प्रेम-रस की अतृप्ति अनुभव हो। यही कारण है कि सूफ़ी साहित्य में सांसारिक प्रेम के आलम्बन, अनुभाव, विभाव और संचारी भावों का चित्रण किया गया हे। सांसारिक प्रेम में वासना है, अलौकिक प्रेम वासना से शून्य है। रूह, कल्ब और सिर्र की कल्पना करते हुए प्रेम-व्यंजना में कहा जा सकता है कि रूह ईश्वर को प्रेम करती है, कल्ब उसे जानता है और सिर्र उसका ध्यान करता है।"

इसी प्रेम-व्यंजना में शरीयता, तरीकत, मारिफत और हकीकत को भी अपेक्षित माना गया है। शरीयत में मुर्दिश के निर्देश से प्रेमी आगे बढ़ता है। पश्चाताप, संयम, त्याग, धैर्य, ईश्वर में अडिग आस्था व विश्वास, मितभोज व मित संभाषण से इश्क जागृत होता है। एकांत सेवन तथा ईश-कृपा से ज्ञान का आविर्भाव होता है। इस प्रकार तल्लीनता को प्राप्त करता हुआ प्रेमी वस्ल की स्थिति में आते ही फना को प्राप्त हो जाता है। फना के बाद भी फकद, शुक्र और शहव की स्थितियों को पार करता हुआ वह बका की स्थिति में पहुँच जाता है। 38

सूफ़ी साधना का यही क्रम विभिन्न प्रतीकों में निबद्ध है। इस साधना के फलीभूत होने के परिणामस्वरूप जब साधक प्रेममय हो जाता है, तब समूचा परिदृश्य ही परिवर्तित हो जाता है। विपरीत स्वभाव वाली वस्तुएँ सम लगने लगती हैं। कण्टकों की चुभन फूलों के समान कोमल लगने लगती हैं, कड़वाहट मिठास में बदल जाती है। शूली की पीड़ा राजसिंहासन का सुख बन जाती है और कारागृह की बंद वायु उद्यान की शीतल मंद सुगंध बन जाती है। प्रेमी में समत्व, सौंदर्य, लय, प्रकाश और जीवन का प्रादुर्भाव हो जाता है। हर्ष-विषाद एक सा लगने लगता है, वह एक साथ प्रेमी, कवि, पागल और साधक बन जाता है। बाह्य पदार्थों का सौंदर्य तुच्छ

लगता है, उसे अंतर्जगत् में आनंद आने लगता है।"

सूफ़ी प्रेमाख्यानों में पात्रों एवं लौकिक वस्तुओं की सृष्टि की गई है। इसका उद्देश्य ही प्रेम का प्रतिपादन करना है। सूफियों की दृष्टि में प्रेम ही सर्वस्व है। प्रेम के लिए ही प्रेमी-प्रेमिका, जीव-ब्रह्म, आत्मा-परमात्मा का नियोजन होता है, जो अपनी साधना और कर्म के द्वारा अंततः प्रेम को प्राप्त करते हैं। यह प्रेम यूँ ही सहज प्राप्त नहीं हो जाता। इसके लिए विरहाग्नि में जलना होता है और पग-पग के कष्टों को हँसकर धारण करना होता है। प्रेम की प्राप्ति के लिए राजा रतनसेन बनना होता है, प्रेम की प्राप्ति के लिए मृगावती के राजकुँवर की भाँति विरह में जलना होता है; प्रेम-प्राप्ति के लिए चित्रावली के कुँवर का रूप धारण करना होता है और प्रेम-प्राप्ति के लिए मधुमालती के मनोहर की भाँति विरह का दीप जलाना होता है, तभी प्रेम के निर्मल प्रकाश से अंतर्जगत् प्रकाशित होता है।

सौंदर्य का स्वरूप

प्रेम और सौंदर्य का संबंध रवि-रश्मिवत् है। प्रेम के प्रादुर्भाव के लिए गुण और सौंदर्य में से एक का होना अनिवार्य है। क्योंकि प्रेम के मूल में इनकी ही सत्ता है। यद्यपि गुण का अस्तित्व भी सौंदर्य में समाहित हो जाता है, क्योंकि सौंदर्य भी एक गुण है। प्रेम और सौंदर्य के साथ ही श्रृंगार जुड़ा हुआ है। प्रेम, श्रृंगार और सौंदर्य व्यक्ति की रागात्मक वृत्ति के पोषक तत्त्व हैं। डॉ. रमाशंकर तिवारी का यह कथन अत्यंत सटीक है, जिसमें वे उपर्युक्त तत्त्वों का समन्वित रूप प्रस्तुत करते हैं। वे लिखते हैं- "श्रृंगार-भावना की सरिता सौंदर्य की गंगोत्री से निकलकर प्रेम के पयोधि में मिलने के लिए गतिमान होती है। वस्तुतः सौंदर्य श्रृंगार का शरीर है और प्रेम उसकी आत्मा है।"40 इस कथन से ध्वनित यही होता है कि प्रेम का उद्गम ही सौंदर्य है।

'सौंदर्य' शब्द का तात्पर्य है-आर्द्र या नम करने वाला, जीवनदाता या आनन्द प्रदायक। 'सुंद' शब्द सौंदर्य के मूल में है, जिसका अर्थ है-कतरनी अथवा कैंची। 'सौंदर्य' नामक गुण मनुष्य-जीवन की विरागात्मक प्रवृत्तियों को कैंची की भाँति काटता है और उसकी रागात्मक वृत्तियों को पुष्ट करता है, जिससे उसका जीवन आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। यह तत्त्व मनुष्य जीवन को आर्द्र करता है, व्यक्ति के हृदय को द्रवित करने की क्षमता सौंदर्य में है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए भारतीय तथा अभारतीय शास्त्रीय ग्रंथों में सहस्त्राधिक मिथक एवं कथानक भरे पड़े हैं। किसी राजा ने किसी सुकुमार को किसी भूल के परिणामस्वरूप दण्ड में वनवास दिया या शूली की आज्ञा दी। सुकुमार के सौंदर्य से अभिभूत होकर रथ-चालक ने उसे अपने परिवार में आश्रय दे दिया अथवा शूली या फाँसी पर चढ़ाने वाले जल्लाद का कठोर

हृदय द्रवित हो गया और उसके हाथ उठे ही नहीं। किसी सौंदर्य-प्रतिमा को देखकर हिंसक बनराज ही नम हो गया और उसने आक्रमण ही नहीं किया। यह शक्ति सौंदर्य की है, यह प्रभाव सौंदर्य का है, इसीलिए इसका तात्पर्य जीवन प्रदायक, आनन्द प्रदायक, आर्द्र करने वाला एवं 'सुंद' अत्यंत सटीक है। 'मधुमालती' में परियाँ मनोहर के इसी सौंदर्य से प्रभावित होकर उसी सौंदर्य के समकक्ष सौंदर्य की खोज करने के लिए तत्पर होती हैं।

'सौंदर्य' का भारतीय दर्शन

भारतीय दर्शन के मूल उत्स वेद हैं। वेदों में 'सुंदर' के लिए अनेक पर्यायों का प्रयोग प्राप्त होता है। ऋग्वेद में इसे सूनर, सुनर, सूनरी आदि की संज्ञा दी गई है। यद्यपि 'सूनर-सुनर' में उच्चारणगत अंतर अधिक नहीं है। ऋग्वेद के कतिपय दृष्टांत उल्लेख्य हैं-

विस्वमस्या नानामचक्षसे जएज्जयोतिष्कृष्णीति सूनरी।।"

विश्वश्य हि प्रणानं जीवनं त्वं वि युदुच्छति सूनार ।।"

वधुरेको विषुणाः सुनरो युवा ज्यडू के हिरण्यम्।।

भारतीय दर्शन ब्रह्म को पूर्ण सौंदर्ययुक्त मानता है। सौंदर्य का संबंध चाक्षुस है। दृष्टेन्द्रियों की सीमित क्षमता जहाँ तक और जिस सीमा तक है, वहाँ सौंदर्य का जितना और जो भी विस्तार है, वह परमसत्ता की ज्योति की छाया मात्र है। 'सौंदर्य' को वेदों और उपनिषदों में ज्योति, द्युति, धु, आभा, प्रकाश, मनोहर, मनोरम, चारुत्व, तेज, तेजोमय, दीप्ति, कांति, उज्ज्वलता, अभिराम, शुभ्र, कोम्य, रोचन, सुभग, सुष्ठु, रमणीय आदि संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। इन शब्दों में निहित भाव ब्रह्म की सौंदर्य सत्ता को ही स्वीकार करते हैं।

ईशावास्योपनिषद् का निम्नस्थ शांतिपाठ-श्लोक हिन्दुओं के यज्ञ-हवन और अन्य कर्मकाण्डों में समापन के समय प्रायः उच्चरित किया जाता है, जिसमें कहा गया है कि ब्रह्म पूर्ण है और जगत् पूर्ण है। पूर्ण ही पूर्ण की उत्पत्ति के मूल में है। पूर्ण का पूर्णत्व ग्रहण करने के पश्चात् भी अंततः पूर्ण ही शेष बचता है। इसे बीजगणितीय चिह्नों से भली-भाँति समझा जा सकता है। जहाँ + (+)+=+ (धन जोड़ धन का बराबर धन होता है) इसी प्रकार ब्रह्म जगत् ब्रह्म और ब्रह्म-जगत्-ब्रह्म शेष है। इसीलिए ब्रह्म पूर्ण ब्रह्म है:

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्यपूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

तात्पर्य यह है कि पूर्ण सौंदर्य में से पूर्ण सौंदर्य (जगत्) को विलग कर भी

दिया जाए तो भी शेष पूर्ण सौंदर्य (ब्रह्म) ही रहेगा।

श्रीमद्भागवत गीता में भी यही कथन किया गया है कि विश्व-जीवन में जो सौंदर्य या विभूति परिलक्षित हो रही है, उसके मूल में ब्रह्म-तेज ही है। सांसारिक सौंदर्य उसी परम ब्रह्म परमात्मा का व्यक्त रूप है :

यद्-यद् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदर्जितमेव वा ।

ततदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम् ।।"

भारतीय दृष्टि में सौंदर्य विषयगत है। इस संबंध में डॉ. रमाशंकर तिवारी का मत है कि- "सौंदर्य पर प्रमेय तथा प्रमाता, विषय तथा विषयी की दृष्टि से भारतीय शास्त्रों में स्पष्ट विचार किया गया उपलब्ध नहीं होता। किन्तु ब्रह्म के स्वरूप का जो ध्वनन उपनिषदों में मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि सौंदर्य में दीप्ति, ज्योति, भास्वरता इत्यादि की विद्यमानता स्वीकार की गई है और ये तत्त्व नेत्र सापेक्ष हैं।"45

यह सत्य है कि सौंदर्य की प्राकट्य-सत्ता नेत्र-सापेक्ष है और नेत्रों के अभाव में सौंदर्य-सत्ता से साक्षात्कार किया जाना असम्भव है। पर, एक सौंदर्य और ऐसा है, जिसे नेत्रों के अभाव में भी जाना जा सकता है, वह है- हृदयगत या गुणाश्रित सौंदर्य। सांसारिक जीवन में दैहिक या मंगल सौंदर्य से ही व्यक्ति प्रभावित होता है, ऐसे व्यक्तियों की दृष्टि में हृदयगत या गुणाश्रित सौंदर्य का कोई महत्त्व नहीं होता। विवेकशील व्यक्ति दैहिक सौंदर्य की अपेक्षा हृदयगत सौंदर्य को महत्त्व प्रदान करता है। महर्षि अष्टावक्र की देह अत्यंत विद्रूप थी-आठ जगह से टेढ़ी, परन्तु हार्दिक या गुणगत सौंदर्य का ओज था उनके पास ज्ञान की साक्षात् प्रतिमा थे महर्षि अष्टावक्र ।

एक बार उनका आगमन राजा जनक द्वारा आहूत विद्वसभा में हुआ। उनकी विद्रूपता देखकर सारे उपस्थित विज्ञजन उपहासात्मक हँसी हँस पड़े। ज्ञान की साक्षात प्रतिमा अष्टावक्र का घोर अपमान और उपहास !! मात्र, महाराज जनक थे, जो उनके सम्मान में सादर उठकर नतमस्तक हुए। उपस्थितजनों की हँसी का महर्षि पर तो कोई प्रभाव नहीं पड़ा; परन्तु उन्होंने जनक से कहा-विदेहराज, तुमने अपनी सभा में बहुत चर्मकारों को एकत्र कर लिया, जिनकी दृष्टि मेरी देह के चर्ममात्र पर है?

महर्षि का करारा व्यंग्य-बाण झेलकर सभा में उपस्थित समस्त विज्ञजनों का मुखमण्डल श्रीहत हो गया। उन सबने महर्षि अष्टावक्र से क्षमा याचना करते हुए खेद व्यक्त किया।

अनेक सूक्तियों और अनेक गीतों में भी यही भाव व्यक्त किया गया है कि मुख का सौंदर्य झूठा है, वास्तविक सौंदर्य तो हृदय का है। परन्तु प्रेमाकर्षण का मूल

तत्त्व यही सौंदर्य ही है। सौंदर्य प्रेम का मूल तत्त्व है अवश्य, परन्तु कतिपय मनीषियों ने प्रेमाकर्षण के मूल में सौंदर्य को मान्यता न देते हुए प्रेमियों के हृदय में उपस्थित भावों को अधिमान्य किया है। श्रीहर्ष ने अपनी कृति 'नैषधचरितम्' में यही तथ्य रेखांकित किया है कि अति सुंदर युवती के सौंदर्य से बालक आकर्षित नहीं होते :

यया यूयनस्तद्वत्परमरमणीयाऽपि रमणी।

कुमाराणामन्तः करणहरणं नैव कुरुते ।।"

सौंदर्य की पाश्चात्य दृष्टि

'एस्थेटिक्स' अर्थात् 'सौंदर्य' के सर्वांग स्वरूप पर प्लेटो से लेकर और कार्ल मार्क्स तक ने गहन विचार किया है। इन सबका दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न है-सौंदर्य के बारे में। सत्य और शिव के साथ सुंदर की अवधारणा पाश्चात्य दर्शन का प्रदेय है। प्लेटो, दृश्यमान जगत् के संपूर्ण सौंदर्य को मौलिक सत्ता की ही प्रतिकृति मानता है। प्लेटो के अनुसार सौंदर्य का आभास इंद्रियों के द्वारा होता है। इंद्रिय-ग्राह्य होने के कारण इसके त्रुटिपूर्ण रूप से ग्रहण करने की संभावनाएँ अधिक रहती हैं। व्यक्ति दृश्यमान जगत् के पीछे के भाग की अवहेलना करता है और विशिष्ट वस्तुओं पर अपना ध्यान केंद्रित करता है।

प्लाटिनस ('नवप्लेटोवाद' के प्रवर्तक) की सौंदर्य संबंधी अवधारणा भी अध्यात्म का रंग लिए हुए है। प्लाटिनस, दृश्यमान जगत् के सौंदर्य को पार्थिव सौंदर्य की संज्ञा प्रदान करता है। इस दार्शनिक विद्वान के अनुसार-एक परमसत्ता ऐसी है, जिसका कोई अंत नहीं, यह स्वतःपूर्ण है। इसी पूर्ण सत्ता की जो लोकोत्तर आभा है, इसी से विश्व प्रकाशित हो रहा है। इस प्रकाशित जगत् के सौंदर्य की सत्ता अंततः परमसत्ता में ही सन्निहित हो जाती है। जागतिक सौंदर्य या पार्थिव सौंदर्य का लय परमसत्ता में ही हो जाता है।

जर्मन के विख्यात दार्शनिक कांट की सौंदर्य-दृष्टि मानस से उद्भूत है-मनुष्य के मस्तिष्क में तमाम प्रकार की संवेदनाएँ उपस्थित रहती हैं। ये संवेदनाएँ बुद्धि की प्रेरणा से उत्पन्न कल्पनाओं से समन्वित होती हैं और जगत् में विभिन्न पदार्थों के रूप में उपस्थित रहती हैं। कांट के अनुसार-सौंदर्य उपयोगी होने के कारण आनन्द प्रदायक नहीं है। इसे समझने के लिए किसी सिद्धांत की भी आवश्यकता नहीं होती। सौंदर्य की अनुभूति से जो आनन्द प्राप्त होता है, उसका संबंध पूर्णरूपेण हमारी मानसिकता से है। भावना से च्युत होने पर सौंदर्य का कोई अर्थ नहीं रहता। इस प्रकार कांट का सौंदर्य-दर्शन मन की सक्रियता से संबद्ध है।

कांट के सौंदर्य संबंधी विचार कार्यात्मक अधिक हैं, सैद्धांतिक कम। किसी पूर्व निर्धारण धारणा के आधार पर किसी वस्तु का सौंदर्य मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। कांट के सौंदर्य-दर्शन के आधार पर कहा जा सकता है कि विश्व की जो नैतिक व्यवस्था है, सौंदर्य उस व्यवस्था का प्रतीक है।

कांट की भाँति हीगेल भी विख्यात दार्शनिक रहे हैं। परन्तु इनकी सौंदर्य संबंधी अवधारणा में हल्की सी पृथकता है। हीगेल सौंदर्य को वस्तु न मानकर एक विचार मानता है जिसका अनुभव इंद्रियों द्वारा होता है। सत्य इससे पृथक् है और इसे विचार द्वारा नहीं, विचारणा के द्वारा जाना जा सकता है। हीगेल के अनुसार-सौंदर्य, सूक्ष्म धारणा और इंद्रियों द्वारा ग्रहण किये जाने वाले भौतिक अथवा पार्थिव पदार्थों का समन्वय है। दृश्य पदार्थों की विविध सौंदर्यमयी सृष्टि के माध्यम से ही बुद्धिसंगत केंद्रीय तत्त्व को देखा जा सकता है।

विकासवादी सिद्धांत के प्रमुख व्याख्याता डार्विन सौंदर्य को अलग ही दृष्टि से व्याख्यायित करते हैं। डार्विन के अनुसार सौंदर्य परस्पर आकर्षण का कारण है। इसी आकर्षण के कारण विपरीत लिंगी जीव लैंगिक व्यापार के द्वारा वंश-वृद्धि की क्रिया का संपादन करते हैं। इस क्रिया में मनुष्य ही नहीं, पेड़-पौधे, कीट-पतंग व पशु-पक्षी आदि सभी जीवधारी भाग लेते हैं। इस प्रकार डार्विन सौंदर्य-दृष्टि को परमसत्ता जैसे आध्यात्मिक शब्दों से मुक्त रखने का प्रयास करते हैं।

पश्चिमी विचारकों में क्रोचे का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, जो सौंदर्य को पूर्णरूपेण आंतरिक एवं मानसिक व्यापार मानते हैं। मन की एक विशिष्ट अवस्था होती है जो 'कल्पना' कहलाती है। मन जब सक्रिय होता है, तब दृश्य जगत् का कार्य-व्यापार उसे प्रभावित करता है। कल्पना का कार्य इस कार्य-व्यापार को नवीन रूपों अथवा बिम्बों में बदलने का है। इस बिम्ब को सहजानुभूति कह सकते हैं। यह जो सहज अनुभूति है, यही अभिव्यक्ति है और यह अभिव्यक्ति ही सौंदर्य है।

मनोविश्लेषक फ्रॉयड सौंदर्य का संबंध 'काम' से जोड़ते हैं। फ्रायड के अनुसार-सौंदर्य का सार काम-रस में निहित है। जब सौंदर्य का आस्वादन किया जाता है, तब जीवनी-शक्ति कल्पना के द्वारा काम-रस में निमग्न हो जाती है।

अर्थ को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की नियति के सिद्धांत को जन्म देने वाले कार्ल मार्क्स, सौंदर्य की परिभाषा प्राणिशास्त्र में नहीं, समाजशास्त्र में ढूँढ़ते हैं। रूसी दार्शनिक और मार्क्सवादी विचारक प्लेखनॉव का मत है कि सौंदर्य की अवधारणा, उसकी उत्पत्ति और विकास को प्राणिशास्त्र में नहीं, समाजशास्त्र में ढूँढ़ा जाना चाहिए, क्योंकि मानव समाज में, विभिन्न जातियों के अपने अलग-अलग सौंदर्य-मापदण्ड हैं।

मार्क्सवादियों की उपर्युक्त अवधारणा भी सौंदर्य के विवेचन में अपना पृथक् महत्त्व रखती है। यह अनुभवजन्य तथ्य है कि प्रत्येक जातियों में सुंदर दिखने के लिए जो कृत्रिम उद्योग किये जाते हैं, वे भिन्न-भिन्न होते हैं। अफ्रीकी जाति की कई कबीले की स्त्रियाँ अपने होठों को अधिकाधिक मोटा बनाने का प्रयास करती हैं। उनमें सौंदर्य का मापदण्ड होठों का मोटापन है, जबकि भारतीय मापदण्ड संतरे की फाँक जैसे अधर हैं, जिनका रसपान करने के लिए कामीजन लालायित रहते हैं। आदिवासी कबीलों में आभूषणों के रूप में अस्थियों से निर्मित वस्तुएँ तथा विभिन्न पशु-पक्षियों के पंख, सींग और चर्म का उपयोग होता है। शिष्ट समाज इसके स्थान पर सोना, चाँदी, हीरे-मोती तथा मणि-माणिकों का प्रयोग करता है।

सुंदर मात्र नारी व पुरुष नहीं होता। मनुष्य की कलात्मक अभिरुचियाँ उसे सौंदर्य की ओर उन्मुख करती हैं। मनुष्य अपने सुंदर और भव्य आवास निर्मित करता है, उसमें विभिन्न उद्यानों उपवनों का आयोजन करता है। स्वयं सुंदर दिखने के लिए वस्त्राभूषणों से देह को सज्जित करता है, केश सँवारता है, ताम्बूल मुख में रखता है और अन्य विविध यत्न करता है। नारी तो सौंदर्य की पर्याय ही है।

निष्कर्षतः सौंदर्य की सत्ता सर्वव्यापी है। सौंदर्य अत्यंत कोमल भाव है, जिसका संबंध केवल हृदय से है। संगीत में ढलकर यह 'नाद सौंदर्य' का रूप धारण करता है, चित्र, मूर्ति व वास्तुकलाओं के रूप में यह 'वस्तु सौंदर्य' की संज्ञा ग्रहण करता है और शब्द में ढलकर यह 'काव्य-सौंदर्य' में परिणित हो जाता है। नारी के पास पहुँचकर नारी-सौंदर्य, पुरुष के पास आकर पुरुषोचित सौंदर्य और जब लौकिक सोपानों को पार कर जाता है, तब यह अतीन्द्रिय सौंदर्य अथवा बाह्य-सौंदर्य के नाम से अभिहित होता है।

सौंदर्य ऐसे अद्‌भुत रस की प्रतीति कराता है, जो अकथनीय है, अवर्णनीय है और अनिर्वचनीय है। सौंदर्य की भावना अतीन्द्रिय अनुभव है, यह चेतना और आत्मा को आनन्दमय बनाता है और इसका लौकिक या खण्ड रूप अलौकिक अथवा पूर्ण ब्रह्म की ओर गति करने की सामर्थ्य प्रदान करता है।

सूफ़ी-दर्शन और सौंदर्य

सौंदर्य के उपर्युक्त विवेचन की पृष्ठभूमि में यह जानना रुचिकर होगा कि सूफ़ी-दर्शन में सौंदर्य के स्वरूप को किस प्रकार विश्लेषित किया गया होगा। यह तो निश्चित है कि सूफ़ियों की सौंदर्य-विषयक दृष्टि मार्क्सवादी, डार्विनवादी और फ्रॉयडवादी तो नहीं रही होगी। सीधे और संक्षिप्त शब्दों में कथन किया जा सकता है कि सूफ़ियों का सौंदर्य आध्यात्मिक सौंदर्य है, परमसत्ता का सौंदर्य है। सांसारिक

सौंदर्य उसी अखण्ड सौंदर्य की प्रतिच्छाया है। सांसारिक सौंदर्य, अखण्ड सौंदर्य तक पहुँचने का माध्यम है। अखण्ड सौंदर्य की प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का चरम और परम लक्ष्य है। इस दृष्टि से सूफ़ियों का सौंदर्य दर्शन प्लेटो के परम सत्य सिद्धांत और भारतीय पूर्ण ब्रह्म सिद्धांत से प्रायः साम्य रखता है। प्रसिद्ध सूफ़ी अलगजाली के अनुसार- "सौंदर्य वह है जो वास्तव में प्रेम को जन्म देता है; किन्तु वह सर्वोत्तम अर्थात् ईश्वरीय सौंदर्य का प्रेमी है। इस संसार में सौंदर्य मूल स्रोत है। वास्तविकता यह है कि जहाँ सौंदर्य होगा, वहाँ प्रेम भी सहज ही हो जाएगा। पूर्ण सौंदर्य ईश्वर में है, अतः वही सच्चे प्रेम का अधिकारी भी है।"" सूफ़ी सुहरावर्दी एच. विल्वर फोर्स के मत में- "जहाँ सौंदर्य की गहराई की ओर हृदाए का तीव्र आकर्षण होता है, वहीं प्रेम होता है।" अब गृह 'तीव्र' आकर्षण क्या है? साधारण आकर्षण तो लौकिक होता है, वह नश्वर होता है; पर तीव्र आकर्षण तो उसी की ओर से हो सकता है; जो अलौकिक हो। सूफ़ी कवियों की नायिकाओं का अलौकिक सौंदर्य है और इसी अलौकिक सौंदर्य की ओर उनके सांसारिक जीवधारी नायक आकर्षित हैं। सूफ़ी कवियों की नायिकाएँ, जो परमब्रह्मस्वरूप हैं; अप्रतिम सुंदर हैं और यह सृष्टि उस चरम सौंदर्य से दीप्त हो रही है। सूर्य, चंद्र, नक्षत्र इनकी ज्योति भी उसी परम और चरम सौंदर्य से ज्योतिर्मान है। उस ज्योति से बढ़कर और कौन ज्योति है :

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती ।।
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी।
तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी ।।
दामिनि दमकि न सरवरि पूजी।
पुनि ओहि जोति और को दूजी ?"

मंझन भी इसी अलौकिक सौंदर्य को मोहम्मद का नाम देते हैं। मोहम्मद का यही सौंदर्य अनेक रूपों में प्रकट होकर सृष्टि में परिलक्षित हो रहा है :

रूप क नाउं मुहम्मद धरा।
अरय न दोसर एकै करा।।"

X X X

इहै रूप परगट बहु रूपा।
इहे रूप बहु भाउ अनूपा।
इहे रूप सभ नैनन्ह जोती।
इहै रूप सभ सायर मोती ।।
इहै रूप सभ फूलन्ह बासा।

इहे रूप रस भँवर बेरासा।
इहै रूप ससिहर औ सूरा।
इहे रूप जग पूरि अपूरा ।।
इहे रूप अंत आदि निदानां ।
इहे रूप धरि धर सो धियानां।
इहै रूप जल थर औ महिअर भाउ अनेग देखाउ।
आपु गँवाइ जो रे कोइ देखे सो किछु देखे पाउ।।"

मोहम्मद के रूप में खुदा का यह नूर सर्वव्यापी है। मधुमालती का सौंदर्य ब्रह्म का सौंदर्य है। यही कारण है कि 'मधुमालती' में कृतिकार ने परम तत्त्व तथा मोहम्मद साहब में कोई अंतर नहीं माना है। मंझन कहते हैं कि गुप्त रूप में जो परमेश्वर है, प्रकट रूप में वही मोहम्मद है :

ऊँचे कहीं पुकारि कै जगत सुने सभ कोइ ।

परगट नाउँ मुहम्मद गुपुत जो जानिय सोइ ।।"

अपने पूर्ववर्ती कवियों की कथा-नायिकाओं के रूप-सौंदर्य का वर्णन करते हुए सूफी कवि उस्मान का कथन है कि प्रेम और रूप या सौंदर्य अन्योन्याश्रित हैं। जीव के रूप में कथा-नायक उसी रूप-सौंदर्य से आबद्ध है। मृगावती के मुख पर रूप था अतः कुँवर प्रेम का शिकार बना। रूपवती पद्मावती से चित्तौड़-नरेश रतनसेन ने उससे प्रेम किया। मधुमालती में रूप-सौंदर्य था अतः मनोहर प्रेमी बनकर वहाँ गया :

मृगावती मुख रूप बसेरा ।
राजकुँवर भयो प्रेम अहेरा।।
सिंहल पद्मावति मो रूपा।
प्रेम कियो है चितउर भूपा ।।
मधुमालति होइ रूप देखावा ।
प्रेम मनोहर होइ तहं आवा।।"

सूफ़ियों का सौंदर्य-दर्शन

सूफ़ी काव्यकारों ने अपनी काव्य-नायिकाओं का नख-शिख-सौंदर्य वर्णन अतिशय तन्मयता के साथ किया है। केश, माँग, ललाट, भौंहें, नेत्र, नेत्रों की पुतलियाँ, कान, नासिका, नासापुट, अधर, मुख, दंत, जिह्वा, भुजाएँ, कंधे, अंगुलियाँ, ग्रीवा, उदर, कुच, पीठ, कटि, नाभि, नितम्ब, पैर, पिंडलियाँ, एड़ियाँ, पैरों की अंगुलियाँ आदि अंग-प्रत्यंग के वर्णन में इन कवियों की पर्याप्त दृष्टि रमी है। इतना ही नहीं,

रूप-वर्णन, मुस्कान, हास, बोली, पद-चालन आदि क्रियाओं से उत्पन्न सौंदर्य-वर्णन में भी इन कवियों का मन रमा है। मंझन ने ही छंद संख्या 76 से लेकर 98 तक मधुमालती के सुप्तावस्था की स्थिति का रूप-श्रृंगार वर्णन किया है। जायसी के पद्मावत में भी दो स्थलों पर उसका रूप वर्णन है। प्रथम, हीरामन तोते द्वारा राजा रतनसेन से कथन किया गया है और दूसरे स्थल पर राघव चेतन अलाउद्दीन से पद्मावती के रूप-सौंदर्य को बखानता है। अन्य कृतिकारों ने भी ऐसे ही सौंदर्य-वर्णन किये हैं।

सूफ़ी कवियों ने इस लौकिक सौंदर्य-वर्णन के द्वारा ईश्वरीय सौंदर्य को व्यक्त करने का प्रयास किया है, अर्थात् व्यक्त द्वारा अव्यक्त का प्रस्तुतिकरण। जायसी ने तो पद्मावती की भौहों और उनके कुटिलपन को क्रमशः काल और राम-कृष्ण के धनुष से उपमा दी है, जिससे उन्होंने रावण तथा कंस का वध किया था :

उहै धनुक उन्ह भौंहन्ह चढ़ा।
केई हतियार काल अस गढ़ा ।।
उहै धनुक किरसुन पहँ अहा।
उहे धनुक राधी कर गहा।।
उहे धनुक रावन संघारा।
उहै धनुक कंसासुर मारा।।"

इस सौंदर्य वर्णन (भौंह का) में भी ईश्वर की शक्ति के रहस्य को स्पष्ट किया गया है और पद्मावती के रूप में राम-कृष्ण के ईश्वरीय रूप को तदाकार किया गया है। तुलसी ने भी यही कहा है कि उस ईश्वर की भृकुटि-विलास मात्र से सृष्टि का निर्माण और लय होता है :

भृकुटि विलास सृष्टि लय होई।

तब यह जीव कृतारथ होई।।

इस प्रकार सूफ़ियों ने लौकिक सौंदर्य में अलौकिक सौंदर्य का अवलोकन किया है।

प्रेम, सौंदर्य और आकर्षण

भारतीय, पाश्चात्य और सूफ़ियों की सौंदर्य संबंधी अवधारणा के विश्लेषण के पश्चात् एक प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है कि सौंदर्य और प्रेम के मध्य वह कौन सा सूत्र है, जो दो प्रेम-पात्रों को परस्पर निकट लाता है? इसी सूत्र का नाम है आकर्षण। आकर्षण का विरुद्धार्थी विकर्षण प्रेम पात्रों की दूरियाँ बढ़ाता है, उन्हें दूर ले जाता है। समस्त दार्शनिकों की मान्यताओं का न्यूनाधिक आपत्तियों के साथ

सार एक ही है कि-लौकिक सौंदर्य, परमसत्ता के सौंदर्य की परछाई-मात्र है। सौंदर्य का संबंध चाक्षस है और हार्दिक है। यहाँ प्रश्न फिर उपस्थित होता है कि जब संपूर्ण सृष्टि का सौंदर्य परम सत्ता के सौंदर्य की अभिव्यक्ति है, तो असुन्दर कौन और कैसे ?

सौंदर्य में तीन तत्त्व निहित हैं-पूर्णता, उचित सामंजस्य और स्पष्टता। इन तीनों तत्त्वों के समुचित समन्वय से सौंदर्य की सृष्टि होती है। इनका समुचित समन्वय परमसत्ता में है, इसीलिए परम सत्ता का सौंदर्य अखण्ड और पूर्ण है और जो पूर्ण नहीं या खोंडेत है, वही कुरूप है। व्यक्ति और सृष्टि पूर्ण नहीं, इसीलिए दृष्टात्मक रूप से उसमें 'असौंदर्य' दृष्टिगोचर होता है।

रामचरित मानस में नारद मोह का एक मिथकीय कथ्य है। नारद को अभिमान हुआ कि उन्होंने 'काम' को जीत लिया है। अपनी इस उपलब्धि का बखान उन्होंने शिव से किया, ब्रह्मा से किया और इन दोनों के द्वारा मना करने पर भी विष्णु से किया। विष्णु परमसत्ता के प्रतीक हैं, जो 'पूर्णमद हैं।' परमसत्ता ने विचार किया-नारद के मन में गर्व का अंकुर उग आया है, जिसे दूर किया जाना आवश्यक है।

नारद जिस मार्ग से वापस लौट रहे थे, उसी मार्ग में विष्णु ने एक मायानगरी की रचना की। नारद उस मायानगरी के राजा शील निधि के दरबार में पहुँचे। राजा ने अपनी बेटी- 'विश्वमोहिनी' का भविष्य नारद से जानना चाहा। विश्वमोहिनी के 'अलौकिक' और 'अद्वितीय' सौंदर्य को देखकर नारद का 'मदन-विजय' तिरोहित हो गया। कन्या के भविष्य की जानकारी देकर वे ध्यान करने लगे- विष्णु का-हरि का-उन सा रूप पाने के लिए; क्योंकि वे तो पूर्ण और अखंड सौंदर्य के प्रतीक हैं। परन्तु मिला उन्हें बंदर (हरि का एक अर्थ ईश्वर के साथ-साथ बंदर भी होता है) का रूप ।

नारद अत्यंत प्रसन्न और आश्वस्त, कि राजकुमारी उन्हीं का वरण करेगी; परन्तु वरमाला लिए हुए शीलनिधि की पुत्री ने नारद की ओर देखा भी नहीं। विष्णु, राजकुमार के वेष में स्वयंवर में आए। उनके रूप-सौंदर्य से आकृष्ट होकर विश्वमोहिनी ने उन्हें वरमाला पहना दी पूर्ण सौंदर्य का पूर्ण सौंदर्य में लय हो गया। नारद खण्ड सौंदर्य के प्रतीक हैं, जो कुरूप और अनाकर्षक होता है।

आकर्षण और विकर्षण मनोमय वृत्तियाँ हैं। संसार के कुछ पदार्थ हमें प्रभावित करते हैं और उनके प्रभाव से हमारा मन और हृदय उनकी ओर खिंचता है। यही आकर्षण है। कुछ पदार्थों में हमारा मन-हृदय नहीं रमता, उनसे हमें वितृष्णा होती है। ऐसे पदार्थों और कार्य-व्यापारों से हम दूर भागते हैं। हृदय उन्हें अस्वीकार करता है-यही विकर्षण है। तो, आकर्षण सौंदर्य में उसी प्रकार निहित रहता है, जैसे

चंद्र-ज्योत्सना में उसकी रश्मियाँ और कल-कल करते प्रवाहित नीर में उर्मियाँ। आकर्षण, सौंदर्य के प्राकट्य और उसके अस्तित्व का सूचक है।

संदर्भ

1. वाचस्पत्यम कोश, पंचम भाग, पृ. 454
2. "सौहार्द्र स्नेहे हर्ष वही 455
3 . मानक हिन्दी कोश, (भाग 3) रामचंद्र वर्मा, पृ. 665
4 . हिन्दी शब्द सागर (छठा भाग) सं. श्यामसुंदर दास, पृ. 3244
5. (क) प्रेमा ना प्रियता हार्द प्रेम स्नेह अमरकोष, प्रथम काण्डमू, पृ. 104
(ख) Love affection, favour, kindness, kind or tender, regard, sport, postime, joy, delight, gladness-Sanskrit-English Dictionary. p. 3801.
6. A deep effection for or attachment or devotion to some one or the expression of this toward others New International Dictionary of English language Webster, p. 1279.
7. Love is indescribable and the attempt to define it as to define life it self- Metaphysics of Rumi, p. 43.
8. (क) अनिर्वचनीयत प्रेमस्वरूपं तथा मूकास्वादनवत् प्रकाशते क्वापि पात्रे- नारदभक्तिसूत्र, सूत्र 51-53
(ख) अकथ कहानी प्रेम की कछू कही न जाए। गूँगे केरी सर्करा खाये अरु मुसकाय ।। (कबीर)
9. श्रीमद्भागवतगीता, 2:29
10. सम्यङ्मसृणितस्वान्तो ममत्यातिशयाङ्कितः ।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते। - भक्ति रसामृतसिंधु (रूपगोस्वामी) सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 106
11. अद्वैतं सुखदुखयोरनुगतं सर्वासु अवस्थासुयत् । विश्रामां हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन हार्यो रसः।
- उत्तररामचरित (भवभूति) सं. डॉ. श्रीनिवास मिश्र, पृ. 98
12. अभिज्ञान शाकुन्तलम् (कालिदास) सं. डॉ. कृष्णकांत त्रिपाठी, पृ. 279
13. जस्सि विअप्पघउणाइक लंक मुक्का। अंतो मणम्मि सरलतणमेइ भावो ।। - कर्पूरमंजरी: राजशेखर, पृ. 18
14. गुणःखलु अनुरागस्य कारणम् न पुनर्बलात्कारः - मृच्छकटिकम् (शूद्रक) सं. जगदीश चन्द्र मिश्र, पृ. 48
15. कामसूत्र वात्स्यायन, पृ. 16
16. यहि संसार सार बयु एक। तिला एक संगम जाव जिव नेह।। पद्मामृत विद्यापति, पृ. 85
17. रामचरितमानस (सुंदरकांड) तुलसीदास, पृ. 35
18. चिन्तामणि (भाग एक) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 69

19. The Science of Emotion: Dr. Bhagwan Das, p. 30
20. Sonnets: Words Saworth, p. 170
21. The Mansiols of Philosophy: Will Durend, p. 170-171
22. A Summar Night's Dream: Shakespeare, p. 56
23. नारद भक्ति सूत्र: सूत्र 54
24. चिन्तामणि (भाग एक) आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 76
25. नारद भक्ति सूत्र सूत्र 60, 68, 71
26. रसखान ग्रंथावली सं. देशराज सिंह भाटी, पृ. 64
27. प्रेम वाटिका रसखान, दोहा 23
28. वही, दोहा 34
29. नई दुनिया (इन्दौर): 8 मार्च, 1987
30. फ्रॉयड के साथ डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही', पृ. 39
31. सूफ़ीमत साधना और साहित्य, हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ. 1
32. हकायके हिन्दी मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी, पृ. 7
33. मौजुल आरफीन मीर हसन, पृ. 16
34. दीवान ख्वाजा गरीब नेवाज मुस्लिम अहमद निजामी, पृ. 24
35. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान डॉ. श्याममनोहर पाण्डेय, पृ. 41
36. तसब्बुफ अथवा सूफ़ीमत डॉ. चंद्रबली पाण्डेय, पृ. 116
37. सूफ़ीमत और हिन्दी साहित्य डॉ. विमल कुमार जैन, पृ. 96
38. वही, पृ. 71
39. वही, पृ. 66
40. शृंगार और साहित्य डॉ. रमाशंकर तिवारी, पृ. 38
41. ऋग्वेद संहिता: पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 1-48-8
42. वही, 1-48-10
43. वही, 8-21-1
44. श्रीमद्भागवतगीता 10-41
45. श्रृंगार और साहित्य डॉ. रमाशंकर तिवारी, पृ. 38
46. नैषधचरितम् श्रीहर्ष-2
47. अलग्रजाली दीमिस्टिक मार्गरेट स्मिथ, पृ. 109
48. अवारिफुल मारिफ अनु. एच. विल्वर फोर्स क्लार्क पृ. 101
49. पद्मावत: जायसी, छंद 5
50. मधुमालती: सं. माताप्रसाद गुप्त, छंद 8
51. वही, छंद 120
52. वही, छंद 8
53. चित्रावली उस्मान, पृ. 13
54. पद्मावत: जायसी, छंद 102

पंचम अध्याय

मधुमालती में प्रेम-व्यंजना

प्रथम दृष्टि में प्रेम होने की सार्थकता मधुमालती में व्यंजित है। मनोहर के मन में प्रेम-प्रीति मधुमालती को प्रथम बार देखकर ही अंकुरित हो गई। मधुमालती के अनुपम सौंदर्य ने मनोहर को अपनी ओर आकृष्ट किया। मनोहर के हृदय में चाहत के जो मेघ उमड़े, उन ने अपार प्रेम-रस का वर्षण किया। यह प्रेम गुण-कथन, स्वप्न-दर्शन अथवा चित्र-दर्शन के द्वारा उत्पन्न नहीं हुआ, अपितु प्रत्यक्ष दर्शन ही इस प्रेमोद्भव के मूल में है। परन्तु नायक के हृदय में नायिका के प्रति प्रेम का उद्भव किसी भी रूप में क्यों न हो, सूफ़ी प्रेमाख्यानों के नायक मूर्च्छित अवश्य हुए हैं। यहाँ प्रसंगवश, इस तथ्य का उल्लेख करना समीचीन होगा कि सूफ़ियों के द्वारा दर्शित प्रथम नायक-नायिका-दर्शन तथा सगुण भक्त कवियों द्वारा दर्शित प्रथम नायक-नायिका दर्शन में पर्याप्त अंतर है। तुलसी के राम जब पुष्प वाटिका में प्रथम बार सीता के दर्शन करते हैं, तो वे रतनसेन, कुँवर अथवा मनोहर की भाँति मूर्च्छित नहीं होते। कृष्ण, प्रथम दर्शन में राधा के सौंदर्य से प्रभावित होते अवश्य हैं, परन्तु मूर्छना उन्हें भी नहीं आती। इन दोनों महान सगुण भक्त कवियों द्वारा प्रथम नायक-नायिका मिलन में भी अंतर है। तुलसी ने सूफी कवियों का अनुसरण करते हुए सीता और राम के प्रथम दर्शन में सीता की सखी को 'माध्यम' बनाया है। यहाँ माध्यम, नायक का गुण-कथन कर नायिका (सीता) को नायक के प्रति आकृष्ट करता है।

सूफ़ी कवि इसके विपरीत नायक को नायिका के प्रति आकृष्ट कराते हैं। सूर के नायक-नायिका किसी माध्यम को स्वीकार नहीं करते। उनका प्रेम प्रत्यक्ष दर्शन के द्वारा होता है। सूर की नायिका किशोरी है, नायक किशोर है। किशोर प्रेमी प्रथम मिलन में ही नायिका से पूछ बैठता है- 'बूझत स्याम कौन तू गौरी?' इतना ही नहीं, अपने साथ भाँरा, चक, डोरी लेकर खेलने का आमंत्रण भी नायक (किशोर कृष्ण) द्वारा नायिका को दिया जाता है। सूफी-प्रेम-प्रदर्शन में यह सब नहीं है। इसका कारण

यही हो सकता है कि सूफी दर्शन में ईशाराधन का माध्यम अव्यक्त परमेश्वर है, जबकि सूर-तुलसी जैसे कवियों का ईश्वर-रूप सगुण है, लोक रंजनकारी है और मर्यादापुरुषोत्तम है।

मधुमालती में प्रेम का स्वरूप

चान्दायन, पद्मावत और ऐसे ही अन्य अनेक ग्रंथों का प्रणयन सूफ़ी कवियों ने किया और उनमें प्रेमाभिव्यक्ति को प्रमुखता प्रदान की। परन्तु प्रेम का जैसा सूक्ष्म, गहन और विशद् विवेचन 'मधुमालती' में प्राप्त होता है, अन्यत्र नहीं। मधुमालती ग्रंथ का प्रारंभ ही 'प्रेम' शब्द से होता है:

प्रेम प्रीति सुखनिधि के दाता ।

दुइ जग एकॉकारि विधाता ।।'

अब यहाँ ग्रंथ के प्रथम छंद का वर्णन, जो ईश्वर को समर्पित है, 'प्रेम' और 'प्रीति' शब्दों के स्थान पर कवि अन्य शब्दों से प्रारंभ कर सकता था, परन्तु उसने प्रथम शब्द में ही समूचे ग्रंथ का उद्देश्य प्रकट कर दिया। जो विधाता इहि लोक और परलोक में एकोंकार कहा जाने वाला है, वह प्रेम-प्रीति और सुख-समृद्धि का प्रदाता है।

मंझन ने ईश्वर को प्रेम और प्रीति का प्रदाता सिद्ध किया है, तो वे सृष्टि के मूल में भी प्रेम को मानते हैं। मंझन का मानना है कि सर्वप्रथम ईश्वर के हृदय में मोहम्मद साहब के लिए प्रेम उमड़ा और फिर इसी प्रेम से सृष्टि का निर्माण हुआ। प्रेम से सृष्टि निर्मित होने के कारण सृष्टि में प्रेम भर गया। संसार में आना उसी जीव का सार्थक हुआ जिसके हृदय में प्रेम की पीड़ा उत्पन्न हुई। ईश्वर ने जिसे विरह-सुख दिया, वह मानों तीनों लोकों का राजा हो गया :

प्रथमहिं आदि पेम परविस्टी।
ती पाछे भइ सकल सिरिस्टी ।
उतपति सिस्टि प्रेम सों आई।
सिस्टि रूप भर पेम सबाई ।
जगत जनमि जीवन फल ताही।
पेम पीर उपजी जिय जाही।
जेहिं जिअं पेम न आई समाना।
सहज भेद तेई किछ्रु न जाना।
जोहिं जग दइअ बिरह दुख दिआ।
त्रिभुवन केर राउ सो किआ।

जनि कोइ बिरह दुक्ख जिअ माने ओहिं जग आवा सुक्ख ।
धनि जीवन जग ताकर जाहि बिरह दुख दुक्ख ।।

मधुमालती में प्रेम के स्वरूप का निरूपण साधारण प्रेम के रूप में नहीं हुआ है। सूफ़ियों की साधना-पद्धति में साधारण प्रेम नहीं, अपितु प्रेम में पीर या विरह की तीव्रता का भाव निहित है। यह विरह सृष्टि के प्रारंभ में ही संसार में आ गया था। यह विरह बड़े पुण्य वाले ही प्राप्त कर पाते हैं:

सिस्टि मूल विरहा जग आया।
पै बिनु पुब्ब पुन्नि को पावा।
पेम पदारथ जगत अमोला।
निहचें जिअं जान्हु यह बोला ।'

मंझन के प्रेम-निरूपण की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि प्रेम के स्वरूप को जितने विस्तार से मंझन ने उद्घाटित किया है, अन्य सूफी कवियों ने उतने विस्तार से उसे स्पर्श नहीं किया है। मंझन ने प्रारंभ के छंद संख्या 27 से लेकर छंद संख्या 30 तक प्रेम के महत्त्व को प्रदर्शित किया है। इसके पश्चात छंद संख्या 113 से लेकर 123 तक मनोहर और मधुमालती की वार्ता के द्वारा प्रेम के महत्त्व का गुणगान किया गया है। पुनः छंद संख्या. 233 से 238 तक मनोहर, पेमा से प्रेम और विरह के संबंध में वक्तव्य देता है। प्रेम और विरह का यह विश्लेषण यहीं नहीं रुकता, अपितु विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से समूचे ग्रंथ में चलता रहता है।

मंझन 'प्रेम' शब्द से अपनी 'मधुमालती' का प्रारंभ करते हैं और 'प्रेम' शब्द से ही ग्रंथ का समापन होता है। मंझन कहते हैं कि कोई लाख प्रयत्न करे, फिर भी संसार में अमर नहीं हो पाता। परंतु, जो व्यक्ति प्रेम-मार्ग पर चलकर मर भी जाता है, तो वह अमर हो जाता है। प्रेम की शरण में जाने से व्यक्ति किसी के मारने पर भी नहीं मरता। प्रेम की शरण में जाने से इहिलोक और परलोक के काल का भय मिट जाता है क्योंकि प्रेम ही संसार की शरणस्थली है : अमर न होत कोइ जग हारे।

मरि जी मरे तेहि मींचु न मारे।
पेम के आगि सही जेइं आंचा।
सो जग जनमि काल सेउं बांचा।
पेम सरनि जेई आपु उबारा।
सोन मरे काहू कर मारा।
एक बार जो मरि जीउ पावै।
काल बहुरि तेहि नियर न आवै।

मिरितु क फल अंब्रित होइ गया।
निहचें अंमर ताहि के कया।
जो जिउ जानहि काल भी पेम सरन करि नेम।
फीटै दुहुं जग काल भी सरन साल जग पेम।।'

प्रेम का आध्यात्मिक स्वरूप

प्रेम की आध्यात्मिक ऊँचाई तक पहुँचने के लिए लौकिक प्रेम, सीढ़ी का कार्य करता है। सांसारिकों का सहसा ही उस लक्ष्य तक पहुँच पाना प्रायः संभव नहीं है। सूफ़ी कवियों ने अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सांसारिक अथवा पार्थिव प्रेम को ही साधन बनाया है। यही कारण है कि समस्त सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्यों में लौकिक प्रेम का आध्यात्मिक प्रेम पर रंग चढ़ाया गया है। मधुमालती इसका अपवाद नहीं है। आध्यात्मिक प्रेम के प्रदर्शन में मांसल प्रेम के आरोपण की प्रवृत्ति का एक अन्य कारण दर्शाते हुए डॉ. माताप्रसाद गुप्त लिखते हैं कि- "इस शारीरिकता का उपर्युक्त अध्यात्मवाद से क्या संबंध है? मेरी समझ में इसका उत्तर यही है कि इन संतों नै जीवन को एक समग्र रूप में देखा है। उनका जीवन-दर्शन शारीरिक आवश्यकताओं की उपेक्षा नहीं करता है; यह अवश्य है कि वह शारीरिक आवश्यकताओं को मर्यादित रखने का उपदेश करता है। इस शारीरिकता के अभाव में पुरुष और नारी की कल्पना मिथ्या होती, इसलिए सूफ़ी-साधकों की यह मर्यादित शारीरिकता उनकी आध्यात्मिक प्रेम-साधना का एक ऐसा अंग है जो उनकी दृष्टि में उनके लक्ष्य में बाधक नहीं होता है।"

हिन्दी काव्य के जो रसिक पाठक हैं और अध्येता हैं, उनके साथ कभी-कभी ऐसी विडम्बना हो जाती है कि पद्मावत और मधुमालती जैसे समासोक्तिमूलक काव्य-ग्रंथों को लौकिक प्रेम-काव्य ग्रंथ समझ बैठते हैं। पर यह प्रेम-कथा अथवा रस-कथा लौकिक ही नहीं, पारलौकिक भी है। तभी तो मधुमालती का नायक (जीव) मधुमालती (ब्रह्म) से कहता है कि हमारी-तुम्हारी प्रीति तो पूर्व से ही स्थिर है। इस जीवन में मुझे व तुम्हें जीवन का लाभ हुआ। जिस दिन विधाता ने मेरे सूक्ष्मांश का सृजन किया, उसी दिन से तुम्हारा दुख परिलक्षित हुआ। तुम्हारे प्रेम-नीर से मेरी मृत्तिका को सानकर मेरी देह निर्मित हुई है। मैं तुम्हें पहले से ही जानता हूँ:

कहै कुँवर सुनु पेम पियारी।

तोहि मोहि प्रीति पुब्व विधि सारी।

एहि जग जीवन मोहि तोहि लावा।

मैं जिउ दे तोर दुक्ख बेसाहा।

मैं न आजु तोरे दुक्ख दुखारी।
तोरे दुख सेउं मोहि आदि चिन्हारी।
जेहि दिन सिरेउ आंस बिधि मोरा।
तेहि दिन मोहि दरसेउ दुख तोरा ।
बर कामिनि तोहि प्रीत के नीरू।
मोहि मांटी भा सानि सरीरू ।
पुब्ब दिनन सेउं जानहुं तुम्हरी प्रीति के नीर।
मोहि मांटी बिधि सानि कै ती यह सिरेउ सरीर ।।"

जिस माटी से मेरा शरीर बनाया गया, वह तुम्हारे प्रेम-नीर से सानी गई थी-यह कथन स्पष्ट ध्वनित करता है कि जीव का अस्तित्व ईश्वर से जुड़ा हुआ है। उसके प्रेम या उसकी कृपा के अभाव में जीव का जीवन संभव नहीं।

प्रायः यही दर्शन समस्त संतों के विचारों में प्रतिपादित हुआ है। वे चाहे भारतीय रहे हों अथवा अभारतीय। जीव ईश्वर का ही एक अंश है। यह अद्वैत भावना सब में व्यक्त हुई है। कबीर ने भी स्वीकार किया है कि :

जल में कुंभ कुंभ में जल है भीतर-बाहर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना यह तत कहहु गियानी।

उधर सगुण भक्ति-मत के प्रबल पोषक तुलसी भी अद्वैतवाद का समर्थन करते प्रतीत होते हैं:

ईश्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी ।।

मंसूर हल्लाज ने भी यही उद्घोषणा निर्भीक होकर की थी- 'अन-अल्-हक' में ही सत्य हूँ। यह और बात है कि उस काल के इस्लाम के कट्टर हिमायती मंसूर के इस चरम सत्य को समझ नहीं सके और इस्लाम के विरुद्ध कथन होने के कारण उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। मधुमालती का नायक भी प्रकारान्तर से मंसूर हल्लाज के विचारों की ही पुष्टि कर रहा है। ऐसा मात्र एक-दो स्थलों पर नहीं, अनेक स्थलों पर हुआ है। एक स्थल पर मनोहर कहता है कि हम दोनों (जीव और ब्रह्म) सदैव साथ-साथ रहने वाले और एक ही देह में निवास करने वाले थे। दोनों के देह की मिट्टियाँ एक साथ सानी गई थीं। एक ही नीर दोनों पनालियों में बहता था और एक दीपक से दोनों देहरियों में प्रकाश होता था। हम एक जीव दो शरीरों में संचरित हुए और एक अग्नि थी जो दो स्थलों पर प्रज्वलित की गई। हम दोनों एक थे, जो दो हुए। एक भवन के दो द्वार जैसे रूप हैं हमारे। हम एक ज्योति, एक रूप, एक प्राण थे। अब मेरे समर्पण पर कोई संदेह न होना चाहिए :

त मैं दुवी सदा संघ वासी।
औ संतत एक देह नेवासी।
औ मैं तुई दुइ एक सरीरा।
दुइ माटी सानी एक नीरा।
एक बारी दुइ बहे पनारी।
एक दिया दुइ घर उजियारी।
एक जीउ दुइ घर संचारा।
एक अगिनि दुइ ठाएँ बारा।
एकै हम दुइ के औतारे।
एक मंदिल दुइ किए दुवारे ।
एकै जोति रूप पुनि एकै एक परान एक देह।
आपुहि आपु जो देइ कोइ चाहे तेहि कर कौन संदेह ।।'

सूफ़ी कवियों में यह अद्वैत भाव सामान्यतः पाया जाता है। यह इसीलिए भी कि सूफ़ियों के मतानुसार अस्तित्व केवल परमात्मा का है। परमात्मा अपने नूर के रूप में प्रत्येक वस्तु में है और प्रत्येक वस्तु परमात्मा में है। भारतीय मिथकों में प्रहलाद की कथा में यही बात सामने आती है।

प्रहलाद खंभे से बँधा हुआ है। उसका पिता हिरण्यकश्यप हाथ में तीक्ष्ण खड्ग लिए अपने विद्रोही बेटे का वध करने के लिए उद्यत है। वह क्रोधावेश में पूछता है-बुला अपने नारायण को, मैं देखूँ, वह कहाँ-कहाँ है? प्रह्लाद अत्यंत शांत, संयत और विनम्रता पूर्वक उत्तर देता है-ईश्वर तो सर्वत्र व्याप्त है। वह मुझ में है, आप में है, इस राजसिंहासन में है, जो वायु संचरण हो रही है उसमें है, जिस रज्जु से मैं बँधा हूँ, उसमें है, इस खंभे में है और आपकी खड्ग में है। हिरण्यकश्यप खड्ग से प्रहार करता है और खंभा फाड़कर भगवान नृसिंह प्रकट हो जाते हैं। अब इस रूप को सगुण और निर्गुण दोनों अपनी-अपनी दृष्टि से ग्रहण करते हैं। तुलसी की - "सीय राममय सब जग जानी/करहुँ प्रणाम जोर जुग पानी" में भी यही अद्वैत भावना सन्निहित है। 'मधुमालती' में इस अद्वैतवादी भावना की एक झलक और स्पष्टतः परिलक्षित होती है, जब मनोहर मधुमालती से कहता है कि तू समुद्र है, तो मैं तेरी लहर हूँ, तू सूर्य है, तो मैं उसकी रश्मि हूँ। मुझे तुझसे कोई अलग नहीं कर सकता। हम दोनों का संबंध बहुत पुराना है। इस परिचय के कारण ही मैं स्वयं अपने जीव को धारण कर रहा हूँ :

तँ जौ समुंद लहरि मैं तोरी।

तँ रवि मैं जग किरनि अंजोरी।

मोहि आपुहि जनि जानु निरारा।
मैं सरीर तुई प्रान पियारा।
मोहि तोहि को पारे बेगराई।
एक जोति दुइ भाउ देखाई।
सभ गियान चख देखेउं हेरी।
हम तुम्ह दुहुं परिचे कब केरी।
अजहूँ मोहि न चीन्हेसि बारी।
संवरि देखु चित आदि चिन्हारी।
अरुझा फांद पेम कर अहा, जो दुहुं जिय केर।
होत आपु महं परिचै सई नर धर जिउ फेरि ।।

जब जीव ब्रह्म को पहचान कर उससे एकाकार होने का प्रयत्न करता है, तव ब्रह्म भी अपने अंश से विमुख नहीं होता और वह भी उसे आत्मसात करने के लिए आतुर हो उठता है। मनोहर (जीव) से उसकी समर्पित भावना जानकर मधुमालती (ब्रह्म) भी उसी तथ्य को दोहराती है जो मनोहर ने व्यक्त किये थे। मधुमालती कहती है कि-हे कुमार! अब तुम मेरी बात सुनो। प्रेम के निमित्त तुमने मेरा जीव अपनी अंजुलि में भर लिया। तुम्हारी प्रीति मेरे मन में उसी प्रकार व्याप्त हो गई, जैसे कस्तूरी मृग की सुगंध। तुम्हारी प्रेम से परिपूर्ण बातों से मैं पागल हो गई हूँ। तुमने मुझ पर जादू कर दिया है। तुमने मेरे हृदय-घट में स्थित जीव को अपहृत कर लिया है। तुम जिस प्रकार मेरे प्रेम में अनुरक्त हो, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे प्रेम में अनुरक्त हो गई हूँ:

अब सुनु कुंवर बात तुई मोरी।
पेम लाइ जिउ लीन्ह अंजोरी।
प्रीति तुम्हारि मोहि जिय छाई।
मिग्र मद पेम सो जा न छपाई।
किहेहु मोहि रस बातन्ह बौरी।
हरेहु जीउ सिर बाहि ठगौरी।
एक जीउ घट अहेउ हमारा।
सोऊ तुम्ह हरि कीन्ह निरारा।
जस तोर जीउ पिरम मद मांता।
मोर जीउ चौगुन तोहि राता।
मति जान्हु सतिभाउ पर पुरुषहिं अधिक सुभाउ ।
चौगुन करि करि जानियहि बाला कर सति भाउ ।।'

जीव और ब्रह्म के अद्वैत संबंधों के मध्य एक प्रश्न सहसा ही उपस्थित होता है कि यदि जीव ब्रह्म का अंश है, तब जीव ब्रह्मा को और ब्रह्म जीव को विस्मृत क्यों कर देता है? रामचरितमानस के किष्किंधाकाण्ड में यही प्रश्न उभरा था। ऋष्यमूक पर्वत पर राम-लक्ष्मण का आगमन होता है। वानरराज सुग्रीव उन्हें देखकर इसलिए भयभीत हो जाते हैं कि ये राजकुमार कहीं बालि द्वारा न भेजे गये हों-मुझे विनष्ट करने के लिए। पता लगाने के लिए वे हनुमान को भेजते हैं। हनुमान विप्र का रूप धारण कर राम के पास जाते हैं और उनसे परिचय पूछते हैं- आप श्याम वर्ण और गौर वर्ण धारण किये हुए कौन हैं जो क्षत्रिय का रूप धारण किये हुए हैं? वन-भूमि कठोर है, आपके चरण कोमल हैं। आपके वन में विचरण करने का क्या कारण है? या तो आप तीन देवों में से कोई हैं, अथवा नर-नारायण हैं अथवा आप त्रिभुवनपति ब्रह्म हैं, जिसने पृथ्वी के भार को उतारने के लिए अवतार लिया है :

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा।
छत्री रूप फिरहु वन वीरा।
कठिन भूमि कोमल पद गामी।
कवन हेतु बन विचरहु स्वामी ।
मृदुल मनोहर सुंदर गाता।
सहत दुसह बन आतप वाता।
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ।
नर नारायन की तुम्ह दोऊ।
जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवनपति लीन्ह मनुज अवतार।।

विप्र वेशधारी हनुमान द्वारा प्रस्तुत की गई प्रश्नावली की उत्तरमाला श्रीराम हनुमान के सम्मुख रखते हैं और उनसे कहते हैं-मैंने अपनी गाथा तुम्हें सुना दी, अब तुम अपना परिचय हमें दो :

आपन चरित कहा हम गाई।
कहहु विप्र निज कथा बुझाई।।"

राम के इतना कहते ही हनुमान को अपने मूल स्वरूप का ज्ञान हो गया कि- मैं तो जीव हूँ और श्रीराम ब्रह्म हैं। तब अपना परिचय न देकर श्रीराम के चरणों में हनुमान गिर पड़े :

प्रभु पहचानि परेउ गहि चरना।
सो सुख उमा जाहि नहि बरना।।

और सत्य यह है कि जीव की जब तक ब्रहा से पहचान नहीं होती, तभी तक उसकी उससे दूरी रहती है। जब दोनों के मध्य अपरिचय की खड़ी दीवार भरभराकर गिरती है, तब जीव का ब्रह्म से मिलन होने में कुछ समय नहीं लगता। यह अपरिचय की दीवार माया-मोह के ईंट-गारे से निर्मित होती है, जिसे भेद पाना आसान नहीं होता। हनुमान श्रीराम से यही संकेत करते हैं कि मैं तो जीव हैं, जो माया के वशीभूत होकर भ्रमित हो रहा हूँ और इसलिए अपने ईश्वर (ब्रह्म) को पहचान नहीं सका। परन्तु आप तो स्वामी हैं, साक्षात् ब्रह्म हैं, आपने कैसे अपने अंश-जीव को भुला दिया? आप भी मनुष्यों की भाँति जीव का परिचय पूछ रहे हैं:

मोर न्याउ मैं पूछा साईं।
तुम्ह पूछहु कस नर की नाई।
तब माया बस फिरउँ भुलाना।
ता ते मैं नहिं प्रभु पहिचाना।।"

X X X

नाथ जीव तब मायाँ मोहा।
सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा।।"

यह माया का आवरण ही है, जो जीव को ब्रह्म से नहीं मिलने देता। इसी माया को सूफ़ियों ने 'शैतान' और 'दुनिया धंधा' जैसी संज्ञाएँ प्रदान की हैं। जायसी ने पद्मावत के प्रतीकों को स्पष्ट करते हुए लिखा है :

नागमती यह दुनिया धंधा।
बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।
राघवदूत सोइ सैतानू ।
माया अलाउदर्दी सुलतानू ।
प्रेम कथा एहिं भांति विचारहु ।
वृझि लेहु जौ वूझै पारहु।।"

अर्थात्, पद्मावत में आए हुए पात्रों में से नागमती दुनियादारी या गोरख धंधा है। राघव दूत शैतान है और अलाउद्दीन माया है। ये सब प्रेम-मार्ग अथवा ईश्वरीय मिलन के पथ के बाधक हैं।

'मधुमालती' में इस प्रकार के माया रूपी पात्रों की कोई आयोजना कवि द्वारा नहीं की गई है। हाँ, प्रेम-पथ का पथिक जीव-मनोहर जब 'मधुमालती' (ब्रह्म) को प्राप्त करने हेतु उद्यम करता है, तब बाधाएँ अवश्य ही उत्पन्न होती हैं। इन बाधाओं के आगमन को सूफ़ी कवि अनिवार्य मानते हैं, क्योंकि इन बाधाओं से सामना करने पर ही साधक के प्रेम की सच्ची परख होती है। जायसी के 'पद्मावत'

में नायक रतनसेन यात्रा करते समय तूफान में फँस जाता है, उसकी नौका क्षत- विक्षत हो जाती है। इसके अतिरिक्त भी और तमाम बाधाएँ उसे घेरती हैं। यहाँ तक कि उसे शूली पर चढ़ा दिया जाता है, जो हीरामन के कारण बच जाता है।

'चित्रावली' में सुजान की नाव भँवर में घिर जाती है, परन्तु अगस्त की अनुकम्पा से वह डूबने से बच जाती है। 'मधुमालती' में भी मनोहर की नौका समुद्री तूफान से टूट जाती है और नायक समुद्री लहरों में बहता हुआ एक वन में पहुँच जाता है, जहाँ उसका सामना एक राक्षस से होता है :

बोहित बोझि समुंद चलावा।
विधि का लिखा जानि नहिं पावा ।
मांस चारि गए पानिहि पानी।
फुनि सो अदिन घरी नियरानी।
समुंद लहरि दरसहिं अँधियारी।
दिल भुलान बोहित कंडहारी।
मग अमग्ग नहिं गएउ बिचारी।
बोहित परेउ भवंर महं भारी।
परतहिं भएउ टूक सौ साता।
चहुँ दिसि बोहित उठे अघाता।
बूड़े इस्ट मिंत जन परिजन बूड़े सहन भंडार।
बूड़े राजपाट जेत आहा बूड़े तुरे तोखार ।।16
बहुरि कुंअर दहुं दिसि जो देखा।
देख दखिन दिसि राकस रेखा।
सरग धरति बिच आउ उड़ाना।
आइ मंदिल ऊपर ठहराना।
रूप भयानक विपरित भाऊ ।
सरग मांथ धरती दुइ पाऊ।
सावन घटा औने जस आवा।
तस राकस मूरति देखरावा।
पांच मांथ दस भुअं बर भारे।
दसी नैन चमकहिं जनु तारे।
दसन पांति जनु कोहंडा जोरि धरा वैसाइ।
किरसुन बरन भयावन देखत जीउ डेराइ ।।

इतने भीषण रूप वाले भयानक राक्षस से मनोहर का सामना होता है और

मनोहर उसकी जीवन-लीला का अंत करने में समर्थ होता है। प्रेम-मार्ग के पथिक के लिए ये बाधाएँ कोई महत्त्व नहीं रखतीं। और सच तो यह है कि प्रेम-साधक अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु स्वयं को इतना तन्मय कर लेता है, कि अपने 'स्व' को भी विस्मृत कर बैठता है। इसी तन्मयता के कारण उसे विघ्न-बाधाओं का पता ही नहीं चलता। प्रेमी बेसुध होकर अपने गंतव्य की ओर बढ़ता जाता है। उसे काँटे चुभ रहे हैं या प्रसून सा कोमल मार्ग है। आँधी चल रही है या शीतल सुवासित समीर बह रही है। प्रचंड धूप है अथवा शीतल छाया उसे सब समान है। प्रेम-योगी भूख-प्यास और देहजनित चिन्ताओं से ऊपर उठ जाता है। उसे कहीं कुछ भी दिखाई नहीं देता- सिवाय अपनी प्रेमिका (ब्रह्म) के। वह विक्षिप्त हो जाता है और गिरते- पड़ते उसके अधरों पर मात्र अपनी प्रेयसी का ही नाम होता है-मजनूँ की भाँति, राजा रतनसेन की भाँति अथवा मनोहर की भाँति। नाव डूबने के पश्चात् राजकुमार मनोहर भी चलते-चलते एक वन में पहुँचता है। मार्ग दुर्गम और कठिन है। सिंह और गजादि चिंघाड़ कर भयावह स्वर उत्पन्न कर रहे हैं। फिर भी न वह रुकता है, न क्षण भर को विश्राम ही कर पाता है। उसके मुँह पर मात्र अपने गुरु (प्रियतमा-ब्रह्म) का नाम है। अत्यंत अँधेरा होने पर कुमार वहीं बैठ गया और मधुमालती (ब्रह्म) का ध्यान करने लगा :

चला जाइ बन माहं अकेला।
अगम पंच अति कठिन दुहेला ।
सीह सेदूर चिंघरहिं हाथी।
एकसर होउ न दोसर साथी।
चलत न खिन मानै बिसराऊँ ।
जपत जीभि भा प्रीतम नाऊँ।
पुनि कजलीबन केर पसारा।
परी सांझ औ भा अंधियारा।
अति असूझ जहँ रेंगि न जाई।
वैसि कुंवर तहँ रैनि बिहाई।
आसन मारि लाइ लौ गुरु सेउं वैसेउ पकरि धियान ।
जुगसम रैनि वियोग के जागत भाय सुजान ।।

मनोहर इतना कृशकाय हो गया है कि उसका चलना कठिन हो गया है। वह मधुमालती-मधुमालती रट रहा है। प्रेम में वह स्वयं की पहचान भी भूल गया है। उसका समूचा ज्ञान और चित्त लुप्त हो गया। उसकी प्रतिज्ञा है कि प्रेम-पथ पर चलते हुए मेरा जीवन भी चला जाए, तब भी मैं पराजय स्वीकार न करूँ। मैं अपने जैसे

सी-सौ जीवों को भी प्रेम पर न्योछावर कर सकता हूँ:

बिरह सरीर आइ अधिकानां ।
कहा कहीं नहिं जाइ बखानां।
मधुमालति-मधुमालति रटई।
संबरि-संवरि सिर मुँह ले धरई।
पिरम भुलान न आपुहिं चीन्हा।
चेत औ गयान सबहिं हरि लीन्हा।
पिरम' पंथ जिउ देत न हारीं।
जौ सौ जीउ हॉहिं ती बारौं।।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मनोहर एक सच्चे साधक की शर्तों का दृढ़ता पूर्वक पालन करते हुए प्रेम-पथ पर अग्रसर होता है और तमाम चुनौतियों का सामना करते हुए अपने प्रेम-ब्रह्म को प्राप्त करने में सफल होता है।

आध्यात्मिक प्रेम का अन्य पक्ष

सगुणोपासक दर्शन में एक सिद्धांत सर्वमान्य है कि जो सर्वस्व खोकर केवल प्रभु से प्रीति करता है, प्रभु भी अपने भक्त से उतनी ही प्रीति करते हैं। भक्त की अपने भगवान के लिए विह्वलता जितनी तीव्र होती है, उतनी ही तीव्र विह्वलता भगवान की भक्त के लिए होती है। 'मधुमालती' में मनोहर की प्रेम-विह्वलता तीव्र रूप में व्यंजित हुई है, 'मधुमालती की विह्वलता भी मनोहर के लिए उतनी ही तीव्र परिलक्षित होती है।

'मधुमालती' अन्य सूफ़ी ग्रंथों की अपेक्षा कतिपय बिंदुओं पर मौलिकता लिए हुए है। इनमें एक बिंदु यह भी है कि नायिका अपने नायक की प्रेम-परीक्षा नहीं लेती। अन्य सूफ़ी प्रेमाख्यानकों में नायिका नायक के प्रेम की परीक्षा लेती है। इस परीक्षा में वे अपने प्रेमियों की कठोर से कठोर परीक्षा लेती हैं। और जब उनके प्रेमी इस परीक्षाग्नि में स्वर्ण की भाँति तपकर निकलते हैं, तब ही उनके प्रेमी अपनी प्रेयसियों को प्राप्त कर पाते हैं। इस प्रसंग में यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि सगुण भक्ति में भी ये तथ्य प्राप्त होते हैं कि भगवान अपने भक्तों की कठोरतम परीक्षा लेते हैं। इन परीक्षाओं के अनेक मिथक हिन्दू-धर्म ग्रंथों में भरे पड़े हैं। राजा हरिश्चंद्र, द्रौपदी का चीर हरण, गज-ग्राह आदि के ऐसे ही मिथक हैं। जायसी की 'पद्मावती' राजा रतनसेन की कठोरता पूर्वक परीक्षा लेती है। यहाँ तक कि रतनसेन के शूली पर चढ़ने की स्थिति निर्मित हो जाती है; परन्तु हीरामन के कारण राजा शूली पर चढ़ने से बच जाता है और इसके उपरांत ही पद्मावती का विवाह रतनसेन से

होता है। परंतु साधक के इन कष्टों को देखकर मधुमालती शीघ्र द्रवित हो जाती है। उसे भी मनोहर से उतना ही प्रेम होता है, जितना मनोहर को मधुमालती से।

विरहाग्नि में केवल मनोहर ही नहीं जल रहा है, मधुमालती भी जल रही है- आग दोनों ओर से लगी हुई है। ब्रह्म भी जीव के वियोग में तप्त है। अप्सराएँ कुमार मनोहर (जीव) को मधुमालती (ब्रह्म) के कक्ष से उठाकर कुमार के नगर में ले जाती हैं। प्रातः जागने पर मधुमालती को कुमार नहीं मिलता। मधुमालती विरह में डूब जाती है। सखियों के समझाने पर वह कहती है कि संसार में जीवन सबको प्रिय लगता है, परन्तु मेरा कल्याण विरह को धारण करने में है। सबका मरण तो एक बार होता है; परन्तु विरह के कारण मैं प्रतिदिन मरण का दुख झेल रही हूँ। कुमार मुझसे प्रेम कर मुझे छोड़ गया और मेरा हृदय ले गया। मैंने अपने जीवन में कभी दुख नहीं जाना, परन्तु सहसा ही मेरे जीवन में दुख का प्रवेश हो गया। हे सखी! विरह की व्यथा को मैं कैसे कहूँ? यदि तुम मेरी भलाई चाहती हो तो मुझे विष लाकर दे दो :

जग जीवन भावै सब काहू।
मोहि भरि विरह मुएं सखि लाहू।
सभ कहँ मरन होइ एक बारी।
मोहि सखी मरन भएउ देवहारी।
प्रीति लाइ मोहि गा परहेली।
जिउ लै गा सिर मोहनि मेली।
जनम न सुनां नाहु दुख केरा।
अचक भएउ हम्ह दुख भटभेरा।
विरह दगध औ कुल के लाजा।
वनां आइ हम्ह जिय सों काजा।
कठिन पीर सखि विरह के मो मुँह कही न जाइ।
किछु उपगार करहि जौ पारहु तो मरिहूँ बिसु खाई।।

मधुमालती की विरह-वेदना का यह तो प्रारंभिक स्वरूप था। पेमा के सहयोग से उसे पुनः कुमार से संयोग सुख का अवसर प्राप्त होता है, परन्तु क्षणिक । मधुमालती की माँ इस प्रेम-प्रसंग की अतिशयता के कारण मधुमालती को मंत्र के बल पर पक्षी बना देती है। पक्षी बनी मधुमालती उड़कर चारों ओर अपने जीव रूपी प्रियतम-मनोहर को खोजती है। अशांत और व्याकुल होकर वह चारों ओर ऐसे भ्रमण करने लगी, जैसे कोई बिच्छू का काटा हो। पर्वतों, वनों, वृक्षों, नगरों, राजाओं और भिखारियों के निवासों में सभी जगह उसने उड़ान भरी, पर उसका

प्रियतम उसे कहीं दिखा नहीं। उसने प्रत्येक तीर्थ पर जाकर अपने सुहाग-प्राप्ति के लिए प्रार्थना की :

मधुमालति सभ छांड़ि उड़ानी।
जोवति खोजति करत हैरानी।
व्याकुलि भई भवै बिकरारा।
जस बाउर हो बीछु क मारा।
गिरि सायर बन फिरि फिरि हेरा।
कहुं न खोज पाउ ओहि केरा।
रन पट्टन जग फिरी उदासा।
पै नहि हिय कै पूजी आसा।
तरु-तरु घर-घर देस बिदेसा।
जन-जन ढूँढे रांक नरेसा।
कजली वन गोदावली मथुरा गया पयाग।
देव द्वारिका औ सभ तीरथ फिरि फिरि मांग सोहाग।।"

इस प्रसंग में मधुमालती का पक्षी हो जाना बड़े महत्त्व का है। शाप ने उसे पक्षी ही क्यों बनाया, और कुछ भी बनाया जा सकता था। इसका तात्पर्य मेरी दृष्टि में यही हो सकता है कि पक्षी ऊपर उठकर ईश्वर की भाँति सर्वदृष्टा हो सकता है। और मधुमालती ब्रह्मस्वरूप है, अतः उस रूप में वह अपने जीव की खोज कर रहा है।

ब्रह्म की जीव के प्रति व्याकुलता और समर्पण का स्पष्ट निदर्शन मधुमालती में होता है। कुमार से रात्रि-केलि के पश्चात् वह जागती है, तो कुमार को नहीं पाती। विरहाग्नि में उसका तन-मन दग्ध होने लगता है। ब्रह्म और जीव की यही तो अनन्यता है कि यद्यपि दोनों बिछुड़ जाते हैं, परन्तु दोनों अपने अंश की प्राप्ति के लिए व्याकुल रहते हैं। यद्यपि ब्रह्म सर्वशक्तिमान है, सर्वसमर्थ है, सर्वव्यापी है, तथापि जीव के बिना वह भी अपूर्ण है और जीव तो ब्रह्म के बिना अपूर्ण है ही। इसलिए दोनों बिछुड़ने के पश्चात् मिलन के लिए व्याकुल रहते हैं।

मधुमालती से जीव विछुड़ गया। वह रो रही है, लाज छोड़कर रक्त के आँसू बहा रही है। डकार मार-मारकर रुदन करने से उसके दाँत ऐसे चमक रहे हैं, मानो स्वयं बिजली ही चमककर उसकी विरह-वेदना का गान कर रही हो। बेसुधी में उसके घने काले केश खुले हुए थे। उसके निरंतर रोते रहने से सतत् प्रवाहित अश्रु-धारा से लोगों को आश्चर्य होने लगा कि ये दो वर्षाकाल कहाँ से आ गये :

मधुमालति जौ सोवति जागी।
बिरह अगिनि नखसिख तन लागी।
ऊभि सांस हिय गह भरि आवै।
तजि लज्या चखु रुहिर बहावे।
नैन भरनि भरि धार जो छूटी।
सैन पूरि जनु बीर बहूटी।
जवहीं दसन डफारत खोला।
दामिनि चंमकि चंमकि जनु बोला।
मुकुलित केस रैनि अंधियारी।
सहज भाउ भादौं झपकारी।
रुदन करत मधुमालति विरह् विया तन साल ।
लोगन्ह् अचरिजु भा यहु भारी अब दुइ बरखा काल।।"

ब्रह्म की प्राप्ति में जीव ही मात्र कष्ट नहीं उठाता, अपितु ब्रह्म भी अपने 'प्रिय' के लिए कष्टों के पाश से आबद्ध हो जाता है। मधुमालती ने तो मनोहर से भी अधिक कष्टों को सहन किया। मनोहर ने तो मात्र योगी का वेश धारण किया; फिर भी मनुष्य-योनि में तो रहा। मधुमालती की तो अपनी योनि भी परिवर्तित हो गई और उसे वन-प्रांत और नगरों के ऊपर उड़ना पड़ा। इस योनि में रहकर अपना कष्ट किससे कहे? उसने सारे सांसारिक कार्य त्याग दिये और 'प्रियतम-प्रियतम' का जाप करने लगी। उसने अपने माता-पिता, सखियाँ, स्वजनादि का त्याग तो किया ही; राज सिंहासन, सुख-भोग, 'भोजन, निद्रा आदि सब कुछ छोड़ दिया और वृक्षों पर रहने लगी :

पीतम पीतम मधु जिय भजा।
मधुमालति सभ धंधा तजा ।
छाड़ेउ मया मोह सयंसारा।
छांड़ेउ कुटुंब लोग परिवारा।
छाड़ीं सखी संघ जो खेलीं।
छाड़ेउ रहस चाउ सुख केली।
छाड़ेउ भोग भुगुति जिय आसा।
छाड़ेउ मंता पिता घर बासा।
छड़िउ अरथ दरब सभ आथी।
छाड़ेउ जन परिजन संघ साथी।

छाड़ेउ राजपाट सुख सेज्या रैनि नींदि दिन भूख ।
छाड़ेउ चित्त चाउ सुख कीन्ह बसेरा रूंख।।

प्रेम और विरह

सूफ़ियों के दर्शन के मूल में प्रेम जनित विरह है। जायसी के 'पद्मावत्' प्रसंग में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने वियोगावस्था की विभिन्न स्थितियों का चित्रण करते हुए लिखा है कि- "राजा रतनसेन के सिंहल पहुँचते ही कवि ने पद्मावती की बेचैनी का वर्णन किया है। पद्मावती को अभी तक रतनसेन के आने की कुछ भी खबर नहीं है। अतः यह व्याकुलता केवल काम की कही जा सकती है, वियोग की नहीं। बाह्य या अभ्यंतर संयोग के पीछे ही वियोग दशा संभव है। यद्यपि आचार्यों ने वियोग दशा को काम दशा ही कहा है, पर दोनों में अंतर है। समागम के सामान्य अभाव का दुख काम वेदना है और विशेष व्यक्ति के समागम के अभाव का दुख वियोग है। जायसी के वर्णन में दोनों का मिश्रण है।" इस दृष्टि से 'मधुमालती' की नायिका का विरह 'वियोग' की श्रेणी में परिगणित होता है। उसे समागम के सामान्य अभाव का दुख नहीं है। मधुमालती दृढ़ संयमी है। प्रथम परिचय में ही वार्तालाप और परिचय के अनन्तर दोनों का प्रेम और हृदय खुल जाता है और खिल जाता है। कुमार के मन में काम-भावना जागृत हो जाती है और वह अपनी शैया से उठकर मधुमालती की शैया पर चला जाता है व कुमारी की ओर हाथ बढ़ाता है, परन्तु कुमारी अपने को बचाती हुई उठ खड़ी होती है और कुमार को इस पाप कर्म से बचने हेतु सचेत करती है :

पियर गात मनमंथ परगासा।
धुक धुक उर मुंचत घट सांसा।
काम बान वेधा न संभारेसि ।
बर कामिनि उर हाथ पसारेसि ।
तव तजि आपनि सेज सिंगारी।
वैसेउ जाइ सेज बर नारी।
बर कामिनि तव हाथ अड़ाई।
उठि के सेज कुंवर कै आई।
कहेसि कुंवर अकरम का कीजै।
मंता-पितहिं अपकीरत दीजै।
एक तिल सुख के कारन सरबस कौन नसाउ ।
तिरिया थोरे अकरम जग अपकीरति पाउ ।।

तिल भर के काम-सुख के लिए अपना सर्वस्व नष्ट कर देना उचित नहीं है और नारी की तो उस थोड़े से अपकर्म से भारी अपकीर्ति होती है।

मधुमालती पहले कुमार से शपथ और ईश्वर की साक्षी करवाती है। जब कुमार ईश्वर को साक्षी मानकर शपथ लेकर वचन भरता है, तभी मधुमालती उससे अपनी मुद्रिका बदलती है और उसके अनन्तर ही राजकुमार मनोहर मधुमालती के साथ रति-क्रीड़ा कर पाता है, रति-क्रिया नहीं करता :

सपत बचा आपुस माॅ भएऊ।
पान प्रान सेतें मिलि गएऊ।
पुनि आपुस महं रंग के बाता।
कहें लाग जेहि रंग जग राता।
पेम रंग पूरुष के राते।
सहज पिरम मद दूनीं मांते।
रतन हिरौती जरी निसानी।
कुंवर दीन्हि कुंवरहिं सहिदानी।
औ जो कुंवरि कर मुंदरी आही।
सो अपने कर पालों बाही।
क्रीड़ा कोड बिनोद लोभाने दुहुं जिय पेम समान ।
कबहुं रहसि जिउ हुलसहिं कबहूं हरहिं गियान।।"

रात्रि भर चली इस काम-क्रीड़ा के पश्चात् मनोहर मधुमालती से विलग हो जाता है, क्योंकि अप्सराएँ भोर के पूर्व ही निद्रित कुमार को उसी शैया सहित उसके नगर में पहुँचा देती हैं। यहीं से प्रेम की पीर-विरह का प्रारंभ होता है। यह विरह समान रूप से दोनों ओर है-कुमार के हृदय में भी और मधुमालती के हृदय में भी। यह वियोग 'विशेष व्यक्ति के समागम के अभाव' द्वारा जनित है। यदि यह काम-क्रीड़ा, काम-क्रिया में परिवर्तित हो जाती है, तो संभवतः उससे वियोग उत्पन्न न होता, उससे शांति और संतुष्टि उत्पन्न होती, जिसका रूप विकृत होता। इसे विकृत या छद्म शांति तथा छद्म संतुष्टि भी कहा जा सकता है। तुलसी ने ऐसी छद्म संतुष्टि के लिए ही कहा है- **"बुझे न काम अगिन तुलसी कहु विषय भोग बहु जातें।"**

मंझन का मत है कि विरह तो सृष्टि के आदि में ही आ गया था; परन्तु उसे पूर्व के पुण्य कर्मों के अभाव में कोई प्राप्त नहीं कर सका। प्रेम से रहित कोई पदार्थ नहीं है और जिसके हृदय में विरह निवास करता है, वह सदैव अमर होता है। विरह की भावना को शास्त्रादि के पठन-पाठन से प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसे तो

ईश्वरीय कृपा से ही प्राप्त किया जा सकता है:

सिस्टि मूल बिरहा जग आवा।
पै बिनु पुब्ब पुन्नि को पावा।
पेम पदारव जगत अमोला।
निहचें जिअं जानहु यह बोला।
देखा सुना जहां लगि होई।
पेम विवर्जित किछु नहिं सोई।
पेम दिया जार्के घट बारा।
तेहिं सभ आदि अंत उजियारा ।
विरह जीउ जेहि के घट होई।
सदा अमर रहे मरे न सोई।
कौनों पाठ पढ़े नहिं पाइअ विरह बुद्धि और सिद्धि ।
जा कहं देइ दयाल दयाकरि सो पावै यह निद्धि ।।

मनुष्य के अंतस में विरह उत्पन्न होता भी है, तो वह ईश्वर की कृपा से और जिसके हृदय में विरह उत्पन्न हो गया, वह तीनों लोकों का स्वामी हो गया। प्रेम- पथ पर चलने वाला अपने प्राणों को खो देता है, फिर उसे या तो जीव प्राप्त होता है अथवा वह अपने प्रियतम को प्राप्त करता है। यह जो विरह है, उसकी लौ चारों ओर लगी हुई है। अब इस विरहाग्नि में जलने से जो वंचित रह जाता है, वह अभागा है। विरह का दुख कोई दुख नहीं है, यह तो विश्व में सुख प्रदाता है। ईश्वर जिसे विरह देता है, वह समस्त संसार को सुख की दृष्टि से देखता है।

विरह संसार में अमृत फल का मूल है। जिसे विरह रूपी अमृत की प्राप्ति हो जाती है, वह सदैव के लिए अमर हो जाता है। मृत्यु उस तक नहीं आती है:

जेहि जिय देयं विरह उपराजा ।
निहचें तीनि भुवन सो राजा।
पेम-पंच जो चढ़ जिउ खोई।
कै जिउ होइ के प्रीतम होई।
विरह दवां चारिहं दिसि लागी।
जो न जरै सो गरुव अभागी।
विरह दुक्ख दुख कहौ न कोई।
जग माँ विरह दुक्ख सुख होई।
जेहि जग दैय बिरह दरसावै ।
सभ दुख सुख तेहि डीठि देखावै।

मंझन अमर मूरि जग बिरहा जनम जो पावे तासु।

निहचें अमर होइ सो जुग जुग काल न आवै पास।।"

मधुमालती में भारतीय प्रेम-विरह एवं फारसी-विरह का समन्वय है। यह समन्वय मात्र मधुमालती में ही उपलव्ध नहीं है, अपितु प्रायः समस्त सूफ़ी प्रेमाख्यानक ग्रंथों में है। भारतीय विरह वर्णन काव्यशास्त्रीय पक्ष पर आधृत होता है, जिसके अंतर्गत विप्रलंभ की चार अवस्थाएँ- पूर्वराग, मान, प्रवास और करुणा हैं। इसके अतिरिक्त प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर वियोग-जनित दुख में उसे भी पृष्ठभूमि के रूप में सम्मिलित कर लिया जाता है। 'बारहमासा' की परिपाटी विरह का प्राकृतिक रूप ही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि "प्राचीन संस्कृत कवियों का सा संश्लिष्ट विशद् चित्रण उद्दीपन की दृष्टि से किए हुए ऋतु वर्णन में नहीं हुआ करता, केवल वस्तुओं और व्यापारियों की अलग-अलग झलक भर दिखाकर प्रेमी के हृदय की अवस्था की व्यंजना हुआ करती है। परिचित प्राकृतिक दृश्यों को साहचर्य द्वारा और कवियों की वाणी द्वारा जो मर्मस्पर्शी प्रभाव प्राप्त है, उसका अनुभव उनकी ओर संकेत करने मात्र से भी सहृदयों को हो जाता है।"29

'मधुमालती' में ये समस्त दशाएँ प्राप्त हैं। पूर्व राग में चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन जैसी स्थितियाँ निर्मित होती हैं। मनोहर-मधुमालती का प्रथम मिलन प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा होता है अतः पूर्वराग की स्थिति निर्मित हो नहीं पाती। इसी ग्रंथ के ताराचंद और पेमा में भी प्रत्यक्ष दर्शन की स्थिति निर्मित होती है। मधुमालती के रूप-सौंदर्य का प्रथम बार दर्शन कर मनोहर सहसा ही मूर्च्छित नहीं होता, सहज मानवोचित उत्सुकता और कौतूहल कौतूहलता उसमें जागृत होती है :

सूती सेज सहज विकरारा।

देखि सजग भा राजकुमारा।

चक्रित चित्त दहं दिसि फिरि हेरा।

विधि यह नगर मंदिल केहि केरा।।"

पल-पल में मूर्च्छित तो वह तब होता है, जब पर्याप्त समय तक ऐसी सुंदर नारी को देखता रहता है और उसके हृदय में पूर्व जन्मों की प्रीति का स्मरण होता है:

कंवल भांति परगासै पुरुख निरखि मुख सूर।

देखत प्रेम पिरीत पुब्ब के हिय उर महं अंकूर ।।

जेउं-जेउं देखे रूप सिंगारा।

खिन मुरछे खिन चेत संभारा ।।

पेमा बाग में झूल रही है। झूलने के कारण उसका अंचल उघड़ गया। इसी

समय सहसा ताराचन्द ने चित्रसारी में प्रवेश किया और जैसे ही उसकी दृष्टि पेमा पर पड़ी, उसके नुकीले उभरे स्तनों को देखते ही ताराचंद मूर्च्छित हो गया :

पाहूं हुत ताराचंद राऊ।
धरत पौरि भीतर दुइ पाऊ।
सौहीं दिस्टि पेमा पर परी।
पंघति आहि पैंघ पर खरी।
झूलत उर आंचर उधिराना।
देखि कुंवर चित गएउ गियाना।
सिहुन जो अहे उठत उर उभे।
वरवस कुंवर नैन गे चुभे।
परत दिस्टि जिउ ले गे हरी।
विनु जिउ कया पुहुमि खसि परी।
जिउ बसि नैन परवस भो धर धरती विसंभार ।
जस कोई सांप डसा तस कांपे वकत न सकै उघारि ।।"

कथन किया जा सकता है कि प्रथम मिलन के दृश्य में दोनों पात्रों की मनःस्थिति में पर्याप्त अंतर है। पूर्वराग का परिपाक इन दोनों दृश्यों में चित्र-दर्शन और स्वप्न-दर्शन एवं गुण श्रवणादि से नहीं होता, अपितु प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा ही होता है।

मन की अवस्था के चित्रण के लिए पर्याप्त अवकाश ही नहीं है। विप्रलंभ की शेष दो दशाएँ-प्रवास और करुणा का चित्रण मधुमालती में पर्याप्त रूप से हुआ है। वास्तविकता तो यह है कि वियोग या विरह की दशा का पूर्ण परिपाक प्रवास की स्थिति में ही होता है। 'मधुमालती' में इसके लिए पर्याप्त अवसर कवि को प्राप्त हुए हैं। प्रथम मिलन के पश्चात् परियों द्वारा मनोहर और मधुमालती को विलग कर देना तथा पेमा के सहयोग से पुनर्मिलन के पश्चात् पुनः विछोह हो जाना तथा मधुमालती का पंछी योनि प्राप्त करना-ऐसे प्रसंग हैं, जिनमें विरह-वेदना के प्रदर्शन के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध होते हैं।

यह विरह वर्णन सामान्य रूप से तो हुआ ही है, बारहमासा और प्रकृति का सहयोग लेकर भी विशिष्ट हुआ है। विरह वर्णन के लिए अपने पूर्ववर्ती कवियों की भाँति मंझन ने भी प्रकृति को उद्दीपन रूप में ग्रहण किया है। कार्तिक मास को शरद ऋतु की अमृत वर्षा भी विरहिणी मधुमालती के लिए विषधारा के समान लग रही है। विकसित कमल उसे कुमुदनियों के रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। शरद् की शीतल रात्रि उसी को सुखकर प्रतीत हो सकती है, जो अपने प्रियतम के साथ आलिंगनबद्ध

हो। मधुमालती अपने पत्र में अपनी सखी पेमा को अपनी व्यथा लिखते हुए कहती है कि मेरा हृदय तो विरहाग्नि में दग्ध हो रहा है, तब भला शरद की शीतल चंद्र- जुन्हाई मुझे हितकर कैसे प्रतीत हो सकती है अर्थात् शरतचंद्र भी मुझे दाह पहुँचा रहा है। इस कार्तिक मास में पड़ने वाली दीवाली का हर्षमय पर्व लोग मना रहे हैं, परंतु यह पर्व मुझे ऐसे प्रतीत हो रहा है, मानों मुझे वनवास हो गया हो अथवा मैं वन में रह रही हूँ:

कातिक सरद सताई बारा।
अमिअ बुंद बरखे विखधारा।
बिगसहिं कंवल भाँति ते बारा।
जनहुं कुमुदिनी ससि उजियारा।
सरद रैनि सीतरि तेहि भावे।
जो प्रीतम कंठ लागि बिहावै।
मोहि तन विरह अगिनि परजारा।
शरद चांद मोहि सेज अंगारा।
तेइ बेरसहिं ते देवस अमोले।
जिन्ह सुख सेज रवन्ह मिठबोले।
सरद रैनि सीतरि तेहि जेहि पिउ कंट नेवास ।
सभ कहं परब देवारी, मोहि सखी बनवास ।।

प्राचीन परम्परा रही है- 'बारहमासा' के अंतर्गत् विरह-वर्णन की। सूफ़ी कवियों ने भी इस परम्परा का निर्वाह किया है। इसी क्रम में मंझन ने भी 'बारहमासा' में मधुमालती की विरह-दशा का गान किया है। भारतीय कवियों में कुछ ने 'बारहमासा' का आरंभ चैत्र मास से (भारतीय पंचागानुसार) किया है, तो कुछ ने आषाढ़ मास में। 'चित्रावली' में इसका प्रारंभ चैत्र मास से हुआ है। 'ज्ञानदीप' में इसका प्रारंभ आषाढ से हुआ है, परन्तु 'मधुमालती' में 'बारहमासा' श्रावण मास से प्रारंभ हुआ है।

सूर की विरहिणी गोपिकाएँ हरे-भरे मधुवनों को उपालम्भ देती हुई 'मधुवन तुम कत रहत हरे' कहकर उच्छवास छोड़ती हैं। राम-सीता के वियोग में वन के खग-मृगों-लता-पल्लवों से सीता का पता पूछते भ्रमण कर रहे हैं- 'हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी तुम देखी सीता मृगनैनी।' ऐसा कुछ 'मधुमालती' में नहीं है। और सच तो यह है कि मंझन को आलंबन और उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण करना अभिप्रेत भी नहीं रहा है। 'बारहमासा' का वर्णन कर कवि ने केवल तत्समय में प्रचलित काव्य-रूढ़ि की पूर्ति की है और इसे अपने सूफ़ी दर्शन- 'प्रेम की पीर' की

अभिव्यक्ति का माध्यम भर बनाया है। ऐसे अनेक प्रसंग मधुमालती में हैं, जहाँ कवि प्रकृति की सुषमा का स्वतंत्र अथवा आलंबन रूप में चित्रण कर सकता था। प्रकृति का आलंबन रूप तो कवि के काव्य-उद्देश्यों के अनुरूप नहीं था, अतः उसके चित्रण में उसका मन न रमना स्वाभाविक है, पर जहाँ विरह की तीन व्यंजना के लिए अवकाश था, वहाँ भी वह मौन रहा। मधुमालती की खोज में मनोहर योगी बनकर निकलता है। उसकी नाव डूब जाने के कारण वह बहता हुआ वनखण्ड में चलते- चलते मधुमालती के नाम का जाप करता रहता है, परन्तु वन-खण्ड के पशु-पक्षियों और लता-गुल्मों से वह राम की भाँति यह नहीं पूछता कि तुमने मेरी मधुमालती को कहीं देखा है क्या? हाँ, विरह को उद्दीपन करने वाला प्रकृति-रूप 'बारहमासा' में परंपरागत ढंग से व्यंजित हुआ है। भादीं मास का एक वास्तविक चित्र दृष्टव्य है:

भादीं भरम भयावनि राती।
विरह दवां मोहि सेज संघाती।
सिंघ मघा पावस झकझोरी।
पेम सलिल दुहुं लोयन ओरी।
आठौँ भाउ मदन के जागे।
सातों सरग ओनइ भुई लागे।
चहुं दिसि घुमरि घोर घहराने।
मैं निजु प्रान गाँन किए जाने।
भादीं निसि जेहिं पीउ न पासा।
सखी कौन तेहि जीवन आसा ।
मैं आरन बन एकसरि विरह अधिक जिय पीर।
निलज प्रान अति पापी तजत जो नाहिं सरीर।।

मधुमालती के विरह वर्णन पर फ़ारसी प्रभाव

प्रेम-व्यंजना के अंतर्गत् 'मधुमालती' का विरह-वर्णन भारतीय पद्धति के अनुसार तो हुआ ही है, उसमें फ़ारसी पद्धति के विरह-वर्णन का भी प्रभाव है। इस प्रकार मधुमालती के विरह वर्णन में भारतीय और फारसी दोनों का समन्वय है।

फ़ारसी प्रेम-विरह का स्वरूप

भारतीय सूफी प्रेमाख्यानक काव्य फ़ारसी प्रेमाख्यानक काव्य से पर्याप्त प्रभावित है। अतः फ़ारसी प्रेमाख्यानक काव्य में प्रेम-विरह का स्वरूप क्या और कैसा

है, इसे समझना आवश्यक है। डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय का मत है कि- "हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों में एक ओर फ़ारसी के सूफी प्रेमाख्यानों की परम्पराएँ सुरक्षित हैं तो दूसरी ओर इनमें भारतीय काव्यों की प्रवृत्तियाँ भी मुखर हुई हैं। अतः हिन्दी के प्रेमाख्यानों का अध्ययन तभी पूर्ण हो सकता है, जब फ़ारसी के सूफी प्रेमाख्यानों की उन प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया जाए जो उनमें प्रमुख रूप से पाई जाती हैं। फ़ारसी के सूफी प्रेमाख्यानों में प्रेम निरूपण की जो भावभूमियाँ हैं, वे हिन्दी के प्रेमाख्यानों के रचयिताओं को प्रेरणा देती रही हैं, तथापि इन दोनों के परिप्रेक्ष्य में पर्याप्त अंतर भी है। प्रेम का मूल संदेश प्रायः एक प्रकार का रहते हुए भी इसके विकास की विभिन्न स्थितियाँ दोनों में भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट हुई हैं। भारतीय प्रेमाख्यानों पर भारतीय वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ गया है।" परन्तु यहाँ फ़ारसी के प्रेमाख्यानों का हिन्दी प्रेमाख्यानों पर पड़ने वाले संपूर्ण प्रभाव का विश्लेषण करना नहीं, अपितु मात्र फ़ारसी के प्रेम-निरूपण का हिन्दी प्रेमाख्यानों पर पड़ने वाले प्रभाव का निरूपण करना ही अभिप्रेत है।

जिस प्रकार भारतीय सूफ़ी प्रेमाख्यानों के अमर गायकों में अमीर खुसरो, मलिक मोहम्मद जायसी, शेख नबी, कुतुवन, मंझन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, उसी प्रकार फ़ारसी प्रेमाख्यानों के कवियों में उमर खय्याम, निजामी, फरीदुद्दीन अत्तार, रूमी, शेखसादी, शब्सतरी, हाफिज और जामी आदि के नामों ने फ़ारसी के सूफ़ी प्रेमाख्यानकों को ऊँचाइयाँ प्रदान की हैं। इनके द्वारा विरचित प्रेम-काव्यों के कतिपय नायक-नायिकाओं का तो इतना भारतीयकरण हो चुका है कि जनसाधारण यह नहीं जानता कि लैला-मजनूं और शीरी-फरहाद भारतीय चरित्र हैं-अथवा फ़ारसी। 'लैला-मजनूं' के कवि निजामी हैं, जिन्होंने सन् 1188 में इस काव्य की रचना की थी। 'लैला-मजनूं' अरब की प्रख्यात कथा है, जिसमें दोनों प्रेमी-प्रेमिकाओं के शरीरी-प्रेम के द्वारा अशरीरी-प्रेम के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति निजामी की एक अन्य कृति 'खुसरो शीरी' करती है। सन् 1483 में रचित जामी कृत 'यूसुफ-जुलेखा' इस श्रृंखला की अन्य कृति है।

भारतीय सूफ़ी प्रेमाख्यानों में प्रायः नायक संघर्ष करते-करते अंततः अपने प्रेम की प्राप्ति में सफल हो जाते हैं। परन्तु फ़ारसी-काव्यों के नायकों के साथ यह सुखांत संयोग जुड़ नहीं पाता। 'लैला-मजनूं' में मजनूं सारी उम्र अपनी प्रेयसी के विरह में तड़पता रहता है और अंततः लैला को प्राप्त किये बिना अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है। यही स्थिति 'खुसरो शीरी' के नायक फरहाद की भी होती है। ये नायक सारे जीवन विरह में तड़पते रहते हैं। प्रेम की यह तड़प, विरह की यह अग्नि फारसी और भारतीय सूफ़ी प्रेमाख्यानों में समान है। जायसी तो यहाँ तक कहते हैं

कि प्रेम में विरह भी है और रस भी है। यह ठीक उसी प्रकार है, जैसे मोम के छत्ते में मधु (शहद) भी रहता है तथा मधुमक्खियाँ रहती हैं। प्रेम शहद-सी मिठास देता है तो मधुमक्खियों-सा विरह का डंक भी चुभोता है :

प्रेमहिं मांह विरह और रसा।
मैन के घर मधु अंब्रित बसा ।।

फ़ारसी प्रेमाख्यानों से भारतीय सूफी प्रेमाख्यान इस अर्थ में कुछ अलग हैं कि जहाँ भारतीय सूफी प्रेमाख्यानों के प्रायः समस्त नायक, नायिका की प्राप्ति के लिए उसके विरह में योगी का वेष धारण कर लेते हैं, वहीं फ़ारसी प्रेमाख्यानों के नायक इस प्रकार के किसी झमेले में नहीं पड़ते। संघर्षों को पार करते हुए भारतीय सूफी प्रेमाख्यानों के नायक अपना अभीष्ट अंततः प्राप्त कर लेते हैं; अपनी प्रेयसियों को अपनी पत्नी का स्थान दे देते हैं, परन्तु फ़ारसी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों के नायकों के साथ यह संयोग बैठ नहीं पाता।

सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानकों में भारतीय प्रतीकों को काव्य का माध्यम बनाया है। ये कवि फ़ारसी प्रतीकों से अप्रभावित हैं। उमर खय्याम से प्रारंभ हुई शराब, साकी, जाम व मयखाने की प्रतीक योजना प्रायः समस्त फ़ारसी कवियों- हाफ़िज, रूमी, अत्तार, निज़ामी आदि में प्राप्त होती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल की हार्दिक पीड़ा यह है कि विरह-वर्णन में भारतीय प्रभाव कम होता जा रहा है। वे जायसी कृत पद्मावत के राजा-प्रसंग की विवेचना में लिखते हैं कि "राजा के निकल जाने के पीछे फिर हम उसे प्रोषितपतिका के उस निर्मल स्वरूप में देखते हैं, जिसका भारतीय काव्य और संगीत में प्रधान अधिकार रहा है और है। यह देखकर अत्यंत दुख होता है कि प्रेम का यह पुनीत भारतीय स्वरूप विदेशीय प्रभाव से- विशेषतः उर्दू शायरी के चलते गीतों से हटता सा जा रहा है। यार, महबूब, सितम, तेग, खंजर, जख्म, आबले, खून और मवाद आदि का प्रचार बढ़ रहा है।"

'मधुमालती' में इन प्रसंगों और शब्दों का अभाव है। इसका कारण यही है कि जितने भी भारतीय सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य प्रणीत हुए हैं, उनके प्रणेताओं में भारतीयता की भावना कूट-कूटकर भरी थी। विरह-वर्णन में इन कवियों ने पूर्णरूपेण भारतीय अभिव्यंजना पद्धति को ग्रहण किया। फिर भी फ़ारसी-पद्धति का न्यून प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, पर भारतीय शब्दों में 'रकत' के आँसू एक ऐसा ही प्रयोग है। यहाँ कवि 'रकत' शब्द के स्थान पर 'खून' शब्द भी प्रयुक्त कर सकता था; परन्तु ऐसा उसने नहीं किया:

जसि तुई ओहि विरहें 'बिकरारी। '
बारह मांस रगत मैं रोबा।

मरन भला न तु ऐस बिछोबा।
समुझि-समुझि सुख फाटै छाती।
मांसु न कया बिरह् भा काती।
रगत आँसु तस पेमैं रोवा।
जेई रे सुनां तेई हिया करोवा ।।*
पेमैं दुक्ख रगत जी रोवा।
सुवटें तासु रगत मुंह खोया।।"
यह सुनि पंछि रुहिर भरि नैनां।
रोइ-रोइ कहै कुंवर सेउं बैना।।"
रकत आंसु घर परे जो टूटी।
सांवन भए ते बीर बहूटी ।।

X X X

मैं पिक रूप फिरिउं सभ बारी।
नैन रगत बिरहें तन जारी।।"

समूची कृति में 'रक्त के आँसू गिरना', 'रक्त के आँसू बहाना' जैसे काव्यांश हैं, पर ये सब भारतीय परिवेश में हैं। 'जिगर के टुकड़े होना', 'दिल टूटना' जैसे फ़ारसी उद्धरण तो नहीं हैं, परन्तु फ़ारसी से प्रभावित 'विरह को 'अस्थियों के लिए' तथा 'माँस काटने के लिए कतरनी' जैसे काव्यांश 'मधुमालती' में हैं:

सखि सुख साजन साथ गा दुक्ख रहा मोहि पासु।
तेहि पर काती विरह भा खिन हाड़हि खिन मांसु ।"
दया चित्त तेहि देखत होई।
परिछाहीं विनु साथ न कोई।
मांसु न रहा कया महं राती।
लागी जाइ हाड़ दुख काती।"

परन्तु ऐसे उद्धरण समूची कृति में एक दो स्थलों पर ही हैं और ऐसा कवि ने केवल विरह की तीव्रता व्यंजित करने के लिए ही किया है। ये एक दो स्थल यदि ग्रंथ से पृथक् कर दिये जाएँ तो समूची कृति ही फ़ारसी प्रभाव से मुक्त हो जाएगी।

वियोग पक्ष में ऊहात्मकता

वियोग श्रृंगार में ऊहात्मक उक्तियों के कथन का सिलसिला पुराना है। "इत आवति उत जात चढ़ि, चली छ सातक हाव" जैसी ऊहात्मक उक्तियों के लिए रीतिकालीन कवि बिहारी तो प्रसिद्ध ही हैं। मधुमालती ऊहात्मक उक्तियों के प्रयोग

से मुक्त है। एक-दो स्थलों पर ऐसे प्रयोग हैं अवश्य, परन्तु ये ऊहात्मक न होकर ऊहात्मकता के आभास मात्र हैं। ताराचन्द, पेमा के सौंदर्य का वर्णन नख-शिख शैली में करते हुए, मनोहर से पेमा के दाँतों की सुंदरता वर्णित कर रहा है। ताराचंद मनोहर से कहता है कि उसके चौकों (आगे के चार दाँत) की चमक निहारकर मैं विचलित हो गया और स्वयं को न सँभालने के कारण अचेत हो गया तथा गिर पड़ा। उसके तिल पर जैसे ही मेरी दृष्टि पड़ी, वैसे ही में जड़वत् हो गया :

चौक चर्मक देखि मैं न संभारा।
परेउं मुरुछि जस बीज क मारा।

X X X

परत दिस्टि तिल सुनु सति भाऊ ।
भएउं जैस तिल बिनु सिर पाऊ ।।"

'मधुमालती' के वियोग-वर्णन की एक विशेषता यह है कि मधुमालती एवं पेमा दोनों के विप्रलंभ प्रसंग में ऊहात्मकता नहीं है। वियोग का आधिक्य नायक व सह-नायक में नायिका की अपेक्षा अधिक है। इसीलिए एकाध स्थलों पर आई हुई ऊहात्मक उक्तियाँ 'मधुमालती' का सह नायक ही करता है।

मधुमालती में लौकिक प्रेम की व्यंजना

लौकिक प्रेम के द्वारा ही सूफ़ी कवि अलौकिक प्रेम के शिखर पर आरोहण करते हैं। इसीलिए मंझन इस प्रेम-कथा को 'रस-कथा' की संज्ञा प्रदान करते हैं। मंझन कहते हैं कि सन् 952 में जब सत्पुरुष कलिकाल को छोड़कर अर्थात् विश्व से नाता तोड़कर चले गये, तब मेरे हृदय में अभिलाषा उत्पन्न हुई कि एक 'रस कथा' को भाषा बद्ध किया जाए। इसीलिए जहाँ-जहाँ से भी हमने सुंदर रस युक्त वचन सुने और जो कल्पना की, उन सबको 'सुरस' रस में वर्णित करूँ। यह अमरत्व प्रदान करने वाली जो 'सुरस' रस अथवा प्रेम कथा है, वह मैं गाकर कहता हूँ :

सन् नी से बावन जब भये।
सती पुरुख कलि परिहरि गए।
तब हम जिय उपजी अभिलाखा ।
कथा एक बांघउं रस भाखा।
सुरस वचन जहवां लहि सुने।
और जो किछु हिरदैं महं गुने।
सो सभ कहाँ सुरस रस भाषी।
सुन्हु कान दे पेम अभिलाषी।

मैं छाड़ेउं गुन कर परसादू।
तुम्ह छांडहु जो बाद सवादू।
अंब्रित कथा सुरस रस सुनहु कहाँ सभ गाइ।
हरूव परत आखर जी देखहु कवि मुंह लेहु छपाइ ।"

पुनः आगे के छंद क्रमांक 40 और छंद क्रमांक 43 में इस कथा को उन्होंने 'रस कथा' ही कहते हुए लिखा है कि जो रसालु हैं अर्थात् रसिक जन हैं, वे ही इस रस-कथा के गुण-दोष को परखने के अधिकारी हैं। रसिक जन ही इस प्रेम कथा की समीक्षा कर सकते हैं:

कथा एक चित दइयं उपानी।
सुन्हु कान दै कहीं बखानी।
अमी रसिक रसाल जो होई।
गुन और दोख बिचारहि सोई।"

छंद क्रमांक 43 में तो स्पष्ट उद्घोषणा करते हैं कि जो सभी रसों का राजा है- अर्थात् श्रृंगार रस, उसे मैं बखान कर कह रहा हूँ।

इसी छंद में इस उद्घोषणा के पूर्व वे कहते हैं कि रसिक श्रोताओ, उस रस- कथा को दत्त चित्त होकर सुनो, जो अमृत-कथा अर्थात् प्रेम-कथा मैं गाकर सुना रहा हूँ। रसिक श्रोता ही रस की परख कर सकता है। नीरस लकड़ी को घुन भी छोड़ देता है और रसहीन ईख को ऊँट भी नहीं खाता। जो रसहीन है, वह सरस रचना को समझ नहीं सकता :

अंद्रित कथा कहीं अब गाई।
रसिक कान दै सुन्हु सोहाई।
रस के बात रसिक पे जाने।
बिनु रस रसिक निरस कै माने।
बिन रस धुन अंब्रित परिहरे।
विन रस ऊंट ऊखि का करें।
जा कहं जेहि रस महं रस होई।
तेहि रस महं रस पावै सोई।
जो जेहि रस के जान न वाता।
सो तेहि रस अनरस उतपाता ।
रस अनेग सयंसार कर सुनहुँ रसिक दे कान।
जो सभ रस महं राउ रस ता कर करीं बखान।।"

अतः इसमें अब कोई संदेह नहीं है कि 'मधुमालती' का लौकिक रूप लौकिक

प्रेम-व्यंजना है जो अलौकिकता के लिए गढ़ी गई है। इतना ही नहीं, अनेक अन्य प्रसंगों में भी इसका उल्लेख 'रसकथा' और 'रसवार्ता' के लिए हुआ है। यह रस-वार्ता या प्रेम-वार्ता मनोहर और मधुमालती के मध्य होती है :

पुनि रस वचन सोहागिनि बोली।
अमिअ वचन रदनच्छद खोली।
चमके दसन कहत रस बाता।
चौंधे तीनि भुवन मों गाता।

मधुमालती अपनी रस-कथा प्रारंभ करती है:

वहुरि कुंवरि रस कथा उभासी।
जनु कुमुदिनि ससि पेम बिगासी ।

मधुमालती द्वारा अपनी रस-कथा सुनाने के अनन्तर राजकुमार मूर्च्छित हो जाता है। चैतन्य होने पर राजकुमार से पूछती है कि और क्यों हुआ? इस रस का सहज हेतु क्या है: तुम्हारा शरीर शिथिल कैसे

सहज हेतु रस पूँछौं केई तोर हरेउ गियान।
अमिअ छिरकि वैसारेउं समुझसि कस न अपान।।49

मधुमालती का कथानक आगे बढ़ता है। कुमार भटकता हुआ वन में पहुँचता है और एक गुफा में सोई हुई पेमा के अनुपम सौंदर्य को अपलक निहारता रहता है। राजकुमारी पेमा उसे देखकर सहसा चौंकती है और फिर वह भी रस-सिक्त वचनों से मनोहर से पूछती है:

पुनि रस वचन सहज रस बोले ।
वर कामिनि औ रूप अमोले ।।50

पेमा के रसयुक्त वचन सुनकर कुमार मूर्च्छित हो जाता है। इन रस सिक्त और रसयुक्त वचनों में विरह का अनुकूल गुण-कथन और मधुमालती से उसके मिलन का आशा भरा संदेश छुपा था :

सुनत कुंवर रस वात सोहाई।
हिय गहभर मुरुछा गति आई।।"

कुंवर जब चैतन्य होता है तव वह भी पेमा से वे रस-वचन सुनना चाहता है जिनसे उसकी जीवनी शक्ति उसे प्राप्त हो जाए :

कहु रस बचन जो पूंछी तोही।
एहि रस मरत जिआएहि मोही ।।

रसयुक्त अमृत-कथा अर्थात् मधुमालती का कथा-प्रसंग पेमा द्वारा जैसे ही कुमार श्रवण करता है, वैसे ही उसके निकलते हुए प्राण रह गये और वह रस-कथा

सुनते ही उसकी संपूर्ण देह पीतवर्णी हो गई :

पेम-कथा अंब्रित रस भरी।
जबहीं कुंवर के कानन्ह परी।
जीउ रहेउ सुनि प्रीतम बाता।
पीत बरन सुनतै भा गाता।।52

पंछी बनी हुई मधुमालती को ताराचंद पकड़ लेता है। मधुमालती ताराचंद से भी रस-वचन कहती है, उसे अपनी प्रेम कहानी सुनाती है :

बहुरि पंछि अंब्रित मुख खोला।
कहै बचन रस भरे अमोला ।।

तात्पर्य यह है कि समूची कृति में 'रस वचन' 'सरस वचन' और अमृत-वचन शब्दों का प्रयोग प्रेम-लौकिक प्रेम के लिए किया गया है। इस प्रेम-वर्णन में प्रेम के समस्त उपबंधों को स्वीकार किया गया है। मंझन स्पष्ट रूप से इसे 'रस-कथा' अमृत-कथा' 'रसवार्ता' कहते हैं और 'सभ रस महं राउ रस' से तो स्पष्टतः 'श्रृंगार रस' की व्यंजना हो रही है।

मंझन जब मधुमालती की कथा प्रारंभ करते हैं, तब भी कहते हैं कि अब उस रसवार्ता की उत्पत्ति सुनो कि कुमार (मनोहर) प्रेम में मत्त किस प्रकार हुआ:

अब उतपति सुनु रस कै बाता।
जैसें कुंवर पेम मद माता ।।

इस रस भरी कथा-प्रेम कथा का प्रारंभ कैसे हुआ, प्रेम की उत्पत्ति कैसे होती है-इसका वर्णन मंझन ने अत्यंत स्वाभाविक रूप से किया है।

भारतीय काव्य शास्त्र में शृंगार के दोनों पक्षों-संयोग या संभोग तथा वियोग या विप्रलंभ की शास्त्रीय विवेचना की गई है। हिन्दी साहित्य का समूचा रीतिकाल संयोग-वियोग के विशद् वर्णन से भरा पड़ा है। विद्वानों ने तो इसे 'श्रृंगग्र काल' तक की संज्ञा प्रदान की है।

मंझन की प्रेम-व्यंजना में शृंगार के दोनों पक्षों का सुंदर परिपाक हुआ है। विरह या वियोग वर्णन तो सूफ़ी प्रेमाख्यानकों का मूलधन है और संयोग पक्ष उसका ब्याज, जिससे मूलधन में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है और मूल पूँजी का आकर्षक विस्तार हुआ है। श्रृंगार और सौंदर्य के अभाव में प्रेम-व्यंजित नहीं हो सकता। मंझन के श्रृंगार और सौंदर्य-वर्णन की पृष्ठभूमि में भी उनके (सूफ़ियों) इस सिद्धांत को परिपुष्ट किया गया है, कि इस सृष्टि का सौंदर्य उस परमशक्ति के अनश्वर सौंदर्य की आभा मात्र है। मंझन की 'मधुमालती' उसी ब्रह्म की प्रतीक होने के कारण अनिंद्य रूप-ऐश्वर्य की स्वामिनी है। जैसा रूप-सौंदर्य मधुमालती का है, उसी के अनुरूप मनोहर भी है।

मनोहर मधुमालती के समान ही सुंदर इसलिए है कि वह जीव है और ब्रह्म (मधुमालती) का अंश है। कोई भी, रूप में इन दोनों के समान नहीं है। यह सूर्य है तो वह चंद्रमा है, यह चंद्र है तो वह सूर्य है:

कहहिं रूप उत्तिम ए दोऊ।
एक-एक लेखें अधिक न कोऊ ।
जो विधि इन्ह दोउ देइ मेरावा।
बाजे तीनिउं लोक बधावा।
जोगिहिं जोग मिलें सुख होई।
औ सुख इन्हहिं जी देखे कोई।
तीनि भुवन जगजीवन साईं।
इन्ह दुहुं प्रीति मिलाव गोसाईं।
त्रिभुवन सिस्टि दूढ़ि हम रहीं।
इन्ह दुहुं सम तीसर कोउ नहीं।
यह सूरुज वह ससिहर यह ससिहर वह सूर।
इन्ह दुहुं पेम प्रीति जौ उपजे त्रिभुवन बाजै तूर ।

यहाँ अप्सराएँ दोनों के रूप-सौंदर्य से अभिभूत होकर प्रभु से प्रार्थना करती हैं कि हे विधाता ! तू तीनों लोकों का स्वामी है, इन दोनों के प्रेम को मिला दे। इनके समान और कोई है नहीं।

प्रसंगवश, राम और लक्ष्मण जनकपुर में नगर-भ्रमण कर रहे हैं। नारियाँ और सुकुमारियाँ उन्हें देख रही हैं, उन्हें अपनी सीता के रूप का स्मरण होता है और अप्सराओं की भाँति वे भी ईश्वर से प्रार्थना कर, कामना करती हैं कि सीता का विवाह श्रीराम से ही हो। 'रामचरितमानस' के इस प्रसंग में और मंझन की मधुमालती के इस प्रसंग में कितना अद्भुत भाव-साम्य है :

देखि राम छबि कोउ एक कहई।
जोगु जानकिहि यह बरू अहई ।।
जो जानकिहि मिलिहि बरू एहू।
नाहिन आलि इहाँ सदेहू ।।
जौं विधि बस अस बनै सँजोगू।
तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू।।"

प्रेम की उत्पत्ति के लिए यौवन-रूपी खेत का होना आवश्यक है। प्रेम की सुकुमार भावना का अंकुरण, पल्लवन और पुष्पण यौवन की उर्वर मृदा में ही संभव है। यद्यपि इस भावना के जन्म के लिए अवस्था का बंधन अर्थहीन होता है, तथापि

प्रेम में काम की जो उद्दाम तरंगें तीव्र गति से संचरण करती हैं, वह यौवन में ही संभव है। सार्थक और मर्यादित काम प्रेम-बंधन को दृढ़ करता है और साधक को ऊर्ध्वगामी बनाता है। विवाह के पश्चात् सखियाँ विदा लेती हुई मधुमालती से कहती हैं कि यदि हमारी देह पर यौवन न आता तो बचपन-सा संग-साथ बना रहता और हम बालपन में ही रहतीं। परन्तु विधाता ने जबरन यह यौवन हममें डाल दिया। यदि विधाता को यह यौवन हमारे शरीरों में डालना ही था, तो उसे गुप्त रखता, प्रकट न करता। हे सखी! तुम विदा होकर जा रही हो, कल हमारे साथ भी ऐसा होगा। प्रिय-मिलन में ही यौवन की सार्थकता है, अन्यथा उसका कोई अर्थ नहीं। हे सखी, ईश्वर यदि पुनः यौवन के बदले बचपन दे दे तो हमें स्वीकार्य है:

मिलहु सखी तुम्ह मो गल लागी।
उपजी मोह मया उर आगी।
काल्हि बहुरि पिय धरिहै बाहां।
चलिहि देस अपनें लै नाहां।
लोग कुटुंब तजि परभुमि जाइव।
फुनि विधि मेरइहि आनि मेराइव।
अंकम देहु लाइ गियं वाहीं।
जियत मिलन फुनि होइ कि नाहीं।
मधुमालति कर देखि विछोवा ।
ऊंचे सबद सखिन्ह सभ रोवा।
बहुतें रोवहिं पायं परि औ बहुतें गियं लागि।
कोई रोवै पुहुमि परि, मया मोह के आगि।। 55

यह यौवन और श्रृंगार लौकिक प्रेम का आभूषण है। मंझन ने संयोग श्रृंगार के लौकिक प्रेम निरूपण में भी परमसत्ता के ही रूप-सौंदर्य का चित्रण किया है। सोती हुई मधुमालती के नख-शिख का वर्णन कर मंझन प्रकारांतर से परमसत्ता के अप्रितम, अलौकिक और अनिर्वचनीय सौंदर्य का ही गुणानुवाद कर रहे हैं। इस चित्रण के लिए मंझन ने छंद 75 से 99 तक 25 छंद मधुमालती के सौंदर्य चित्रण को समर्पित किये हैं। इसी सौंदर्य को निहार कर मनोहर के हृदय में प्रेम जागृत होता है।

मंझन के संयोग श्रृंगार में चार स्थलों पर प्रेम की घोर मांसलता का चित्रण हुआ है। प्रथम, मधुमालती और मनोहर द्वारा प्रथम परिचय के पश्चात् की काम- क्रीड़ा तथा द्वितीय पेमा के सहयोग से चित्रसारी में मिलने के समय काम-क्रीड़ा। तीसरी और चौथी बार काम-क्रीड़ा भी होती है और रति-क्रिया. भी सम्पन्न होती है, जो विवाहोपरांत मनोहर-मधुमालती तथा ताराचंद-पेमा-दोनों दम्पति सम्पादित करते हैं।

मंझन ने इस रति-क्रीड़ा के चित्रण में जहाँ ताराचंद पेमा को मात्र एक छंद (491) प्रदान किया है, वहीं नायक-नायिकों को 5 छंद (449 से 453) समर्पित किये हैं। इसका कारण नायक-नायिका की स्थिति को सहनायक-सहनायिका की स्थिति से उच्च और प्रधान दर्शाना हो सकता है।

विद्वानों ने मंझन के इस घोर मांसल प्रेम के चित्रण पर आश्चर्य व्यक्त किया है कि उनके सूफी सिद्धांतों और आध्यात्मिक प्रेम-व्यंजना के चौखटे में लौकिक प्रेम- व्यंजना का यह स्वरूप कहाँ से और किस कोण से 'फिट' बैठता है? यह मांसल चित्रण किस आध्यात्मिक रूप को व्यक्त कर रहा है और इसकी अलौकिकता कहाँ है :

तौ ओलट भै सखी एक कहा।
बाला कीन्ह कोक पढ़ि कहा।
चौंकी मधु सुनि बोल गति सही।
पै बुधि लाज दुहुं बिच गही।
गुन परगट तौ लाजहि खोवा ।
लाज करै तो गुन हर गोवा।
यह उपखान जानि मन हंसी।
गारुरि ससुर कुठाहर डंसी।
कुच कुंभन्ह नख आंकुस परे।
बिद्रुम अधर कीर रस धरे।
जल जोबन अवगाह देखि कै ढाढस करै न चित्त ।
कनक कलस दुइ दै हियें संतरै लाज सरित्त ।।
सुरत पेम रस अंकों भरेऊ ।
रतन अबेध बेध जनु परेऊ ।
कंचुकि तार तार उर फाटी।
उधसी सिरहिं मांग औ पाटी।
सेंदुर मिलि गा तिलक लिलारा ।
काजर नैननि पीक रतनारा।
कंठइं कंठहार गा टूटी।
दल मलि मलै पंक गा छूटी।
बहुरि फूटि गै अंब्रित खानी।
भई सांति हिय साध जुड़ानी।
काम सकति निसि बीती एकहिं एक न टार।
तब गै तिन्ह जिय सांत भे जब छूटि गगन तें धार।। 56

प्रथम समागम के अवसर पर लाज के कारण रति-रंग उत्पन्न नहीं हो रहा था। छिपी हुई एक सखी ने मधुमालती से कहा कि तेरे कोकशास्त्र पढ़ने का क्या लाभ ? मधुमालती चौंक 'पड़ी और सलज्ज तत्पर हो गई।

ऐसा ही प्रेम-वर्णन ताराचंद पेमा की मधुयामिनी के समय किया गया है :

उठा कोह फुनि मन मंथ दापा।
मान ढील भा काम बियापा।
बज्र समान अही जो बाला।
भै रवि उदौ सोम औ पाला।
कुंवर पकरि कर अंगुरी चापी।
सघन मांहि दामिनि जनु कांपी।
बहुरि जी कर कुच मर्दत गए।
सकुचि त सांस उसासत भए ।
नवल नेह नौ जोबन अंगा।
रैनि बिहानि दुहूं रति रंगा।
राजकुंवर कहं रजनी तिल-तिल सुक्ख बिहाइ।
पेमां बिरह बियाकुलि सूर सूर चिल्लाइ ।।

उपर्युक्त दोनों काम-चित्रणों में से पेमा-ताराचंद का चित्रण तो साधारण नायक-नायिका की सांसारिकता का प्रदर्शन है। मगर कथा के नायक-नायिका पर तो जीव और ब्रह्म का रूपक आरोपित है। ऐसे में जीव और ब्रह्म के मध्य रति क्रिया कैसे सम्पन्न हो सकती है?

यही प्रश्न पाठकों को भ्रमित करता है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त इस प्रकरण में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि- "मेरी समझ में इसका उत्तर यही है कि इन संतों ने जीवन को एक समग्र रूप में देखा है। उनका जीवन-दर्शन शारीरिक आवश्यकताओं की उपेक्षा नहीं करता है। यह अवश्य है कि वह शारीरिक आवश्यकताओं को मर्यादित रखने का उपदेश करता है। इस शारीरिकता के अभाव में पुरुष और नारी की प्रेम-कल्पना मिथ्या होती, इसलिए सूफ़ी साधकों की यह मर्यादित शारीरिकता उनकी आध्यात्मिक प्रेम-साधना का एक ऐसा अंग है, जो उनकी दृष्टि में उनके लक्ष्य में बाधक नहीं होता है। भारतीय साधनाओं में प्रायः शारीरिकता का संपूर्ण निषेध मिलता है, इसीलिए भारतीय पाठकं प्रायः इन प्रेम-काव्यों में इस प्रकार शारीरिकता को देखकर इन्हें लौकिक प्रेम-काव्य मात्र समझ बैठता है, अथवा वह एक उलझन में पड़ जाता है, कि वह इन्हें अलौकिक प्रेम का काव्य मानें या लौकिक प्रेम का। किन्तु इस प्रकार के पूर्वाग्रह से मुक्त होकर देखने पर ही हम सचमुच इन सूफ़ी

संतों की प्रेम-साधना का मर्म ठीक-ठीक ग्रहण कर पाएँगे।"

डॉ. माता प्रसाद गुप्त सूफी प्रेमाख्यानक काव्य के अधिकारी विद्वान हैं। उनका उपर्युक्त मत लौकिक प्रेम-व्यंजना के कारणों के उत्तर में ठीक हो सका है। परन्तु मेरा अपना दृष्टिकोण यह है कि जब 'मधुमालती' में लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम-प्रदर्शन का निर्वाह किया गया है, तब घोर माँसल चित्रण में भी अलौकिकता की तलाश क्यों नहीं की जानी चाहिए? मेरे मतानुसार, ताराचन्द-पेमा के मांसल प्रेम-चित्रण को सामान्य मनुष्य का गार्हस्थिक रूप समझना चाहिए और नायक-नायिका के मांसल प्रेम में अध्यात्म ढूँढ़ा जाना चाहिए। जीव का स्वभाव है-सुख प्राप्ति । दुख की कल्पना मात्र से ही व्यक्ति भयभीत हो जाता है। भारतीय साहित्य का आदर्श सुखांत होता है। ऐसा इसीलिए कि ईश्वर आनन्दस्वरूप है और जीव ईश्वर का अंश होने के कारण वह भी आनन्दस्वरूप है। जब जीव अपने मूल से बिछड़ जाता है, तब वह अपने मूल स्वरूप आनन्द की खोज में ही सतत् रहता है और इसीलिए उसे सुख आकर्षित करता है तथा दुख विकर्षित करता है। मधुमालती और मनोहर की काम-क्रीड़ा इसी अर्थ में ग्रहण की जानी चाहिए।

एक बात और है। जीव (मनोहर) अपने ईश्वर (मधुमालती) से बिछुड़ गया है। दीर्घान्तराल के पश्चात् अनेक कष्टों को सहन करता हुआ उसे अपने ईश्वर का सौंदर्य-दर्शन होता है वह उसे आतुरता वश शीघ्र प्राप्त करना चाहता है। ईश्वर देखता है कि अभी साधक की साधना अधूरी है। उसमें आतुरता तो है, परन्तु विरह की तीव्रता नहीं है। इसीलिए वह स्वयं पक्षी बनना स्वीकार कर, साधक के विरह को उद्दीप्त करता है।

साधक का विरह जब अपनी चरमावस्था पर पहुँच जाता है, तब उसे ईश्वर की प्राप्ति होती है, वह ईश्वर से एकाकार हो जाता है। मधुमालती-मनोहर के विवाह और काम के प्रथम मिलन-प्रसंग को मेरे विनम्र मतानुसार इसी अर्थ में ग्रहण किया जाना चाहिए, तभी मधुमालती का प्रेमाख्यानक वास्तविक धरातल प्राप्त कर सकेगा।

लौकिक प्रेम के विविध पक्ष

सरस-प्रेम और अध्यात्म-प्रेम के अतिरिक्त 'मधुमालती' में प्रेम के अन्य पक्षों को भी चित्रित किया गया है। संतान-प्रेम संसार में सर्वविदित है। राजकुमार मनोहर के माता-पिता भी इस सहज और प्रकृत सत्य का निर्वाह कर रहे हैं। कुमार मधुमालती के विरह में दग्ध है और अपने माता-पिता से अपने जीव (प्रेयसी) को ढूँढ़ने जाने हेतु आज्ञा चाहता है। संसार में ऐसे कौन से माता-पिता हैं, जो अपनी

इकलौती संतान को अपने से पल भर को भी दूर करना चाहेंगे? फिर ऐसी संतान, जो चौथेपन में तमाम प्रार्थनाओं के पश्चात् प्राप्त हुई हो।

मनोहर के विचार जानकर माता-पिता का जी भर आया और दोनों कुमार के पैरों पर गिर पड़े। वे कहने लगे हमारे प्राण तुम्हीं हो। तुम भले ही हमारा बध कर दो, परन्तु वृद्धपन में हमें छोड़कर मत जाओ। हमारा राजपाट तुम्हारे बिना सब मिट जाएगा और तुम्हारे न रहने पर हम मर जाएँगे। हमारे दुःखों को दूर करने के लिए तुम्हीं श्रवण कुमार के समान हो। हे पुत्र! हम तो डूबते जहाज हैं जिसे दुख रूपी सागर से तुम्हीं पार कर सकते हो :

माता-पिता सुनत गह भरे।
दुवौ कुंवर के पायनि परे।
कहेन्हि पूत जानहुं परवाना।
हम दुहुं घटकर तुमहीं प्राना।
बरु हम पूत अडारहु मारी।
बिरिध बैस जनि जाहु अडारी ।
राजपाट सभ मिलिहै मांटी।
हम तुम्ह बाजु मरब हिय फाटी।
आइउ धूप पियरि जम घेरें।
सरवन मोर तुहीं दुख करें।
हम कहं बिरिध वैस अति दारुन पूत न छाड़हु भीर।
जस समुंद कर बोहित तुम्ह विन लाव को तीर।।59

मंझन ने संतान-प्रेम का ऐसा करुण चित्रण छंद संख्या 170 और 171 में किया है। अगले ही छंद में मनोहर की दारुण व्यथा पुनः परिलक्षित होने लगती है। माता-पिता रो-रोकर कहते हैं, कि पुत्र अब हमारा कोई भरोसा नहीं है। अब हम तो प्रातःकाल के दीपक हैं अतः हमें निराश न करो। यदि हम चले गये तो तुम्हारे कारण संसार में हमारा नाम तो रहेगा। यदि ऐसा न हुआ, तब हम पुत्र-वियोग में राजा दशरथ की भाँति मर जाएँगे। हे पुत्र! यदि तुम जाना ही चाहते हो तो पहले हमें मार दो, फिर जाओ। तुम्हारे बिना हमारा कोई नहीं है। तुम्हारे बिना तो हम मर ही जाएँगे :

जियं भरोस जनि करहु हमारा।
आइउ मोर दीप भिनुसारा।
मांता पितहि जनि करहु निरासा।
बिछुरि बहुरि केहि मिलन के आसा।

जी मैं यह कलि परिहरि जाऊं।
तोहि सेउं जियत रहे जग नाऊं।
सुत वियोग जसरथ के नाई।
हम फुनि मरब पूत तुम्ह ताई।
हम दूनीं पहिलेहि जिउ मारहु ।
तो तुम्ह पूत बिदेस सिधारहु ।
मोरें जियत न बिछुरहु मोरें और न कोइ ।
हिया फाटि ररि मरिहीं संवरि संवरि गुन रोइ ।।

पेमा को बचपन में राक्षस उठाकर ले गया और वर्षों के पश्चात् जब राक्षस से मुक्त होकर वह माता-पिता से मिली तो उनका संतान-प्रेम उमड़ पड़ा। इतना ही नहीं, पेमा का सखी-प्रेम भी साकार हो उठता है :

पेमा नाउं सुनत सभ धाए।
उठि चलि राज दुआरे आए।
राजा उठि धएउ विसंभारा ।
औ रानी सिर पान संभारा ।।।
बहुरि आइ सभ मिलीं सहेलीं।
लरिकाई संघ साथ जो खेलीं।
फुनि गावति सभ चेरी आईं।
पांउ लागि के मिलीं सबाई ।। 62

माता-पिता अपनी संतान का सदैव भला चाहते हैं। परन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी बात को लेकर माता-पिता क्रोधावेश में आकर कई हल्की दण्डात्मक कार्यवाही भी कर बैठते हैं, उसके पश्चात् उन्हें पश्चाताप होता है। प्रेम-विरह में आकुल मधुमालती पर अपनी माँ के समझाने का कोई प्रभाव नहीं हुआ। परिणामतः वह मंत्र-बल के द्वारा मधुमालती को पक्षी बना देती है। अपनी बेटी को पक्षी-रूप में देखकर माँ का वात्सल्य जागृत हो उठा और वह पश्चाताप करने लगी, कि यह मैंने क्या अनर्थ कर डाला। माता-पिता दोनों रोते-रोते अचेत हो गये :

रूपमंजरी मन पछितानी ।
कहै कहा मैं कीन्ह अयानी।
मंता पिता तेहि पुत्री कारन रोवत भये अचेत ।
पुतरी नैन कारि ओ धोइ कीन्हि दुहुं सेत ।।

मित्र प्रेम

ताराचन्द ने मनोहर का मिलाप मधुमालती से कराया और दोनों के विवाह कराने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। तब से दोनों की मित्रता और अधिक सुदृढ़ हो गई। दोनों साथ-साथ खेलते, खाते और हँसी-खुशी दिन व्यतीत करते तथा पल भर को भी दूर न होते :

दूनों संघ मानहिं रह केली।
भोग भुगुति औ प्रीति नवेली।
खाइ खेलि हंसि दिन बहरावहिं ।
रैनि सोइ सुख नींद बितावहिं।
निमिख न आपु माहिं बेगराहीं।
संतत दुवौ एक संघ रहाहीं।
कबहुं अहेरे मन बहरावहिं।
कबहूँ होउ हॅगुरे लावहिं।।

ताराचंद जब पेमा के सौंदर्य को देखकर अचेत हुआ, तब मनोहर व्याकुल हो गया और उसकी भरपूर सुश्रूषा की। इतना ही नहीं, ताराचन्द का पेमा से विवाह कराने में मनोहर की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। मनोहर ने पेमा का विवाह ताराचन्द से कराने के लिए उसके पिता से प्रार्थना की:

कुंवर ठाढ़ भा दुहुं कर जोरी।
कहेसि पिता बिनती एक मोरी।
आएसु होइ तौ बिनति कराऊं।
कहत पिता सेउं बात लजाऊं ।
रायं कहा मैं आएसु देऊं।
कहा तुम्हार परिछि सिर लेऊ ।
तब दूनहुं मिलि वात उघारी।
ताराचंद कुंवर कुल भारी।
गरुव गरिस्ट मान गढ़ पती।
पंडित पर उपगारी सती।
राज दुलारि तुम्हारी बचा बहिनि है मोरि।
कहिय तौ ताराचन्द कहं देहूं गांठि दुहुं जोरि ।।"

मानवीयता से प्रेम

मधुमालती का मनोहर आदर्श प्रेमी तो है ही, उसे मानवता से भी प्यार है।

सच्चा प्रेमी अपने प्रेम के उन्माद में मानवता को विस्मृत नहीं करता। यही कारण है कि पेमा की करुण व्यथा सुनकर वह व्यथित हो जाता है और पेमा का उद्धार करने के लिए अपने प्राणों की चिन्ता न करते हुए राक्षस से सामना करता है। वह राक्षस को मारकर पेमा को उसकी कारा से मुक्त कराता है।

पेमा कुमार से उसकी चिन्ता न करने और मधुमालती की खोज करने की बात कहती है। वह कहती है कि मैं तो राक्षस की कारा में मर ही रही हूँ, तुम क्यों मेरे लिए प्राण देते हो?

प्रश्न के उत्तर में राजकुमार जो दृढ़ निश्चयी वचन कहता है, इन्हीं वचनों से उसका मानवता के प्रति प्रेम स्पष्ट हो जाता है। वह कहता है कि हे बालिके! मैं रघुवंशी हूँ और रघुवंशियों का धर्म राक्षसों का संहार कर गौ और नारी की रक्षा करना है। यदि में ऐसा न कर सका तो मेरी माँ के कुल को लजाने वाला मैं होऊँगा। तुझे संकट में पड़ा देखकर भी यदि राक्षस के भय से मैं तुझे छोड़कर पलायन कर जाऊँ। तो मुझसे जीवन भर भी कुल की यह लाज न धोई जा सकेगी। यह मेरा कृत्य जगत् में मेरी अपकीर्ति का कारक होगा:

रहसि कुँअर तब बचन अमोला ।
सुनहुँ जो बरकामिनि सेउं बोला।
जौ पै पत्र देइ निधि मोही।
राकस मारि जाउं ले तोही।
जीयं भरम जनि मानहु वारी।
मैं रघुवंसि राकस संघारी।
गाइ त्रिया जी करौं न गोहारी।
पेमा कुल लाजै मंहतारी।
तोहि परिहरि जी जाउं पराई।
कुल लज्या जंम धोइ न जाई।
तोहि छाड़ि जी भाजों पेमा राकस केरी संक।
जग जीवन अपकीरति कुल पै चढ़े कलंक ।। 66

'मधुमालती' में प्रेम के उपर्युक्त प्रकारों का संबंध उस मूलधारा से नहीं है, जो ग्रंथ के केंद्र में प्रवाहित हो रही है। यहाँ यह आशंका भी व्यक्त की जा सकती है कि प्रेम के उपर्युक्त प्रकारों को प्रेम की परिधि में आवेष्टित कैसे किया जा सकता है? इनका संबंध तो प्रेमेतर व्यवहार से है? परन्तु, जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि मंझन की प्रेम-विषयक दृष्टि का विस्तार-क्षेत्र व्यापक है। 'प्रेम' शब्द स्वयं इतना व्यापक अर्थ रखता है कि उसमें ममता, दया, करुणा, वात्सल्य,

साहस, शौर्य, वीरत्व प्रभृति जैसे भाव समाहित हो जाते हैं। तभी तो व्यावहारिक जीवन में ममता-वात्सल्य जैसे भावों को मातृ-प्रेम, मित्र-प्रेम, दया-करुणा जैसे भावों को मानवीय-प्रेम और साहस-शौर्य वीरत्व जैसे भावों से राष्ट्र-प्रेम, समाज-प्रेम आदि का भाव ग्रहणीय होता है। इस दृष्टि से लौकिक या श्रृंगारिक प्रेम के अतिरिक्त उपर्युक्त प्रकारों की संज्ञा भी प्रेम-परिधि के अंतर्गत् है।

प्रेम और प्रेम की पीर मनुष्य को सत्कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करता है। प्रेम के नाम पर व्यक्ति को बड़े से बड़ा और कठिन से कठिन कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है अतः प्रेम का महत्त्व असंदिग्ध है। ब्रज-प्रेम ने कृष्ण को कंस-वध की प्रेरणा दी, तो सीता के प्रेम ने राम को रावण का संहार करने के लिए प्रेरित किया। 'मधुमालती' के प्रेम निरूपण में एक यह संदेश भी अवगुण्ठित है। मनोहर पेमा का, राक्षस की कारा से उद्धार करता है तो इसके पीछे मधुमालती के प्रेम की प्रेरणा है। कुमार पेमा से कहता है कि तू मधुमालती को जानती है, तब मैं तुझे अकेला छोड़कर कैसे जा सकता हूँ? पेमा, तू देख, मधुमालती के प्रेम के वशीभूत होकर मैं क्या-क्या कर सकता हूँ? अपने प्रेम-पात्र के स्मरण के बल पर मैं वह करूँगा, जो अब तक नहीं किया। मैं उस राक्षस को मिट्टी में मिला दूँगा और रक्त की सरिता बहा दूँगा।

हे पेमा! यदि इस युद्ध में मेरी विजय हुई तो मेरा यश होगा और यदि न हुई तो मधुमालती के नाम पर फिर मेरा चाहे जो कुछ भी हो :

तुइं जौ लेहि मधुमालती नाऊँ।
तोहि परिहरि कैसे फुनि जाऊँ।
मधुमालति कर पेम संभारी।
का किछु करौं देखु वर नारी।
बर कामिनि पीतम बौसाऊ।
सो किछु करों जो कीन्ह न काऊ।
एक धायं धरि मेरवाँ मांटी।
टूक-टूक कैं डारों काटी।
रुहिर देखु कसि नदी बहावों।
मांसु गिद्ध जंबुक अघवावों।
जौ मोहि राकस सेतें बिधि जे देइ बधाउ।
नत मधुमालति नाउं लै यह जिउ रहे कि जाउ।।"

कुमार के उपर्युक्त मन्तव्य में दार्शनिक प्रेम की भी स्पष्ट व्यंजना है। ईश्वर (मधुमालती) की कृपा और बल पाकर जीव (मनोहर) कुछ भी करने में समर्थ हो जाता

है। ईश्वर की कृपा से जीव अकरणीय को भी करणीय बना लेता है। इस अर्थ में भी मनोहर के उक्त कथन को ग्राह्य किया जा सकता है।

संदर्भ

1. मधुमालती सं. माताप्रसाद गुप्त, छंद ।
2. वही, छंद 27
3. वही, छंद 29
4. वही, छंद 538
5. वही, पृ. 26
6. वही, छंद 113
7. वही, छंद 117
8. वही, छंद 118
9. वही, छंद 123
10. रामचरितमानस: तुलसीदास, 1
11. वही, 2-2
12. वही, 2-3
13. वही, 2/6-7
14. वही, 3-2
15. पद्मावत: सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 270
16. मधुमालती: सं. माताप्रसाद गुप्त, छंद 177
17. वही, छंद 262
18. वही, छंद 181
19. वही, छंद 182
20. वही, छंद 142
21. वही, छंद 355
22. वही, छंद 348
23. वही, छंद 354
24. जायसी ग्रंथावली सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 24
25. मधुमालती: सं. माताप्रसाद गुप्त, छंद 131
26. वही, छंद 29
27. वही, छंद 233
28. पद्मावत: सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 33
29. मधुमालती: सं. माताप्रसाद गुप्त, छंद 75
30. वही, छंद 75-76
31. वही, छंद 471
32. वही, छंद 405

33. वही, छंद 403
34. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय, पृ. 48
35. पद्मावत: सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 25
36. मधुमालती: सं. माताप्रसाद गुप्त, छंद 144
37. बही, छंद 212
38. वही, छंद 218
39. वही, छंद 219
40. वही, छंद 367
41. वही, छंद 402
42. वही, छंद 408
43. वही, छंद 421
44. वही, छंद 481
45. वही, छंद 39
46. वही, छंद 40
47. वही, छंद 43
48. वही, छंद 108
49. वही, छंद 112
50. वही, छंद 188
51. वही, छंद 242
52. वही, छंद 253
53. वही, छंद 72
54. रामचरितमानस (बालकाण्ड) तुलसीदास, पृ. 222
55. मधुमालती: सं. माताप्रसाद गुप्त, छंद 508
56. वही, छंद 450
57. वही, छंद 492
58. वही, पृ. 26
59. मधुमालती, छंद 170
60. वही, छंद 172
61. बही, छंद 285
62. वही, छंद 287
63. वही, छंद 353
64. वही, छंद 463
65. वही, छंद 487
66. वही, छंद 257
67. वही, छंद 259

उपसंहार

भारतीय प्रेमाख्यानों में सूफी प्रेमाख्यानक ग्रंथों का विशिष्ट स्थान है। सूफ़ी कवियों ने भारतीय प्रेम कहानियों को अपने सिद्धांतों के प्रचार का माध्यम बनाया। प्रेम की पीर के इन अमर गायकों ने प्रेमानुभूति को नई परिभाषा और सर्वथा नवीन दिशा प्रदान की। शेख नबी, नूर मोहम्मद, कुतुबन, मंझन व मलिक मोहम्मद जायसी आदि ने जिस अलौकिक प्रेम का गायन किया, इसमें मंझन का काव्य-स्वर सबसे ऊँचा और सबसे अलग है। 'मधुमालती' के सटीक व्याख्याकार और विद्वान संपादक डॉ. माताप्रसाद गुप्त मंझन की कृति और उनके कृतित्व के संबंध में लिखते हैं कि "मंझन, सच पूछिए, तो उत्कृष्ट कथाकार भर हैं, महाकाव्यकार बनने का उन्हें तनिक भी मोह नहीं है। उनकी रचना केवल प्रेम-रसिक के लिए है। जो प्रेम के तत्त्वों के सरस निरूपण मात्र में रुचि रखता है, उसके लिए मंझन की रचना एक परम उत्कृष्ट कृति है, किन्तु जो निरे काव्य-रसिक हैं, उन्हें वह नहीं संतुष्ट कर सकती है। मंझन की कला विषय के उत्तरदायित्वपूर्ण निर्वाह, सतर्कता, संयतता और सुरुचि का परिचय देती है। उनका लक्ष्य है प्रेम रस, काव्य रस नहीं और उसी की दृष्टि से हमें मंझन की इस कृति को देखना चाहिए। और यह कहना अनावश्यक होगा कि इस दृष्टि से देखने पर उनकी सफलता स्वतः दिखाई पड़ती है।"

डॉ. राज बुद्धिराजा मंझन के प्रेम-दर्शन को उद्घाटित करती हुई लिखती हैं कि- "यह स्वीकार करने में ज़रा भी संकोच नहीं होना चाहिए कि मंझन का प्रेम-वर्णन अत्यंत व्यापक है। वह सरल, स्वाभाविक हृदयग्राही और संयमित है। उसमें शील-मर्यादा का कहीं भी उल्लंघन नहीं है। यहाँ तक कि ताराचन्द और मधुमालती के विवाह के लिए माता-पिता की सहमति होते हुए भी दोनों विवाह नहीं करते। इसी प्रकार पेमा भी मनोहर को भाई के रूप में ग्रहण करके प्रेम का उच्च आदर्श स्थापित करती है। मंझन का प्रेम भारतीयता के आधार पर अंकुरित, पल्लवित और विकसित हुआ है। इस तथ्य की अवहेलना नहीं की जा सकती कि यह प्रेम

अलौकिक होने पर भी लौकिक, मर्यादित और व्यावहारिक है।"

श्री सियाराम तिवारी ने मंझन के प्रेम-निरूपण में छह विशेषताएँ उद्घाटित की हैं। इनके अनुसार, प्रथम विशेषता प्रेम की उत्पत्ति वड़े ही स्वाभाविक ढंग से हुई है। दूसरी विशेषता-कथा के नायक-नायिकाओं व सहनायक-सहनायिकाओं का अविवाहित होना है। तीसरी विशेषता-कथा-पात्रों का उभयपक्षीय प्रेम है। जितना प्रेम मनोहर में मधुमालती के लिए है उतना ही मधुमालती में मनोहर के प्रति है। चौथी विशेषता है-संयम। विवाह के पूर्व मनोहर-मधुमालती दो बार तन्मयतापूर्वक मिले हैं, परन्तु संयम और मर्यादा को उन्होंने छोड़ा नहीं। पाँचवीं विशेषता के रूप में तिवारी जी ने अतिरंजना का उल्लेख किया है। अतिरंजित प्रेम के रूप में उन्होंने दो स्थलों के उदाहरण दिये है एक, मनोहर और मधुमालती के प्रथम मिलन और दूसरी बार ताराचन्द और पेमा के प्रथम मिलन में मनोहर और ताराचन्द को क्रमशः मधुमालती और पेमा के अद्‌भुत रूप को देखकर मूर्च्छित होता हुआ दिखाया गया है।

इसी विशेषता में तिवारी जी का कथन विरोधाभासी प्रतीत होता है। एक ओर वे अतिरंजित प्रेम के रूप में उपर्युक्त प्रकार से दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं और दूसरी ओर लिखते हैं कि- "यह अतिरंजना मधुमालती जैसे और उस युग के काव्य के लिए अस्वाभाविक नहीं है मधुमालती के प्रेम-वर्णन को मात्र अतिरंजित कहा जा सकता है और वह अतिरंजना भी एक सीमा के अंदर ही है।"

मेरे मतानुसार, यदि तिवारी जी 'मधुमालती' के प्रेम को पाँचवीं विशेषता के रूप में 'अतिरंजना' देखते हैं तब अतिरंजना तो अतिरंजना है, फिर वह सीमा के अंदर हो, चाहे सीमा के बाहर। अस्तु ।

आध्यात्मिक प्रेम को तिवारी जी ने 'मधुमालती' के प्रेम की छठवीं व अंतिम विशेषता के रूप में चित्रित किया है। यह सर्वमान्य विशेषता है। वस्तुतः 'मधुमालती' की प्रेम-व्यंजना का आधार ही आध्यात्मिक प्रेम है।

उपर्युक्त प्रेम के अतिरिक्त प्रेम की लौकिक विशेषताओं, जैसे अन्य तथ्यों को इस अध्याय से तिवारी जी ने बहिष्कृत किया है, परन्तु स्वतंत्र अध्याय में संयोग- वियोग पक्ष के रूप में शृंगार का विश्लेषण किया है।

डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय मंझन के प्रेम की अभिव्यंजना के संबंध में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि "समग्र दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि मंझन एक स्वतंत्र परंपरा के कवि हैं, अतः उनका प्रेम और दर्शन भी कई अर्थों में हिन्दी के अन्य सूफ़ी कवियों से भिन्न है।"

उपर्युक्त मतों का समाहार करते हुए निष्कर्षतः कथन किया जा सकता है

कि 'मधुमालती' में कवि ने लौकिक प्रेम-चित्रण के द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। परन्तु जैसा कि डॉ. माताप्रसाद गुप्त का मत है, कि मंझन की रचना केवल प्रेम रसिक के लिए है-पर्याप्त सच है। यहाँ एक बात और है। मानव स्वभाव का मन वहीं रमता है, जहाँ रस होता है। सूफी कवियों सहित मंझन ने भी यदि मात्र कोरे धार्मिक और दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया होता तो उनका एक भी ग्रंथ जनसाधारण का कण्ठहार न बन पाता। यही कारण है कि अपने सिद्धांतों के प्रतिपादन में इन कवियों ने सरस-प्रेम का आश्रय ग्रहण किया है।

मंझन की प्रेमाभिव्यक्ति खुले मैदान में क्रीड़ा करती है। इसमें संकीर्णता नहीं है। मनोहर-मधुमालती तथा पेमा-ताराचन्द के रूप में प्रेयसी और पत्नी का प्रेम, मधुमालती और रूपमंजरी के रूप में माँ-बेटी का प्रेम, मनोहर और उसके माता- पिता के रूप में संतान-प्रेम, मनोहर द्वारा पेमा को राक्षस से बचाने के रूप में मानवीय-प्रेम और इन सबसे हटकर अध्यात्म-प्रेम-प्रेम के विविध रंगों से मंझन ने प्रेम की तस्वीर बनाने का सफल प्रयास किया है। 'मधुमालती' में लौकिक प्रेम के समस्त प्रकारों का समाहार करते हुए अलौकिक प्रेम-व्यंजना का निदर्शन है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

उपजीव्य ग्रंथ

1. मंझन कृत मधुमालती- सं. माताप्रसाद गुप्त, मित्र. प्रकाशन प्रा. लि. इलाहाबाद, सन् 1961

उपस्कारक ग्रंथ

1. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौंदर्य- डॉ. रामेश्वर लाल खंडेलवाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 96, दरियागंज, दिल्ली, संवत् 2015

2. कबीर-ग्रंथावली- सं. डॉ. माताप्रसाद गुप्त, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद, सन् 1985

3. काव्य और कला तथा अन्य निबंध- जयशंकार प्रसाद, भारती-भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम संस्करण संवत् 2015

4. कामसूत्र और फ्रॉयड- डॉ. रूपचंद गोविन्द चौधरी रचना प्रकाशन 45 ए, खुल्दाबाद, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1973

5. चिन्तामणि (प्रथम भाग) - आचार्य रामचंद्र शुक्ल इंडियन प्रेस, (पब्लि.) प्रा. इलाहाबाद, प्रथम संस्करण

6. चिन्तामणि (द्वितीय भाग)- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, (पब्लि.) प्रा. इलाहाबाद, प्रथम संस्करण

7. जायसी का पद्मावत काव्य और दर्शन- डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन, कानुपर, द्वि. सं. 1973

8. जायसी की प्रेम-साधना- रामचंद्र बिल्लौरे, सामयिक प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली, प्र. सं. 1973

9. जायसी के पद्मावत का मनोवैज्ञानिक अध्ययन- सुभाष बाला भारतेन्दु भवन लोअर बाजार, शिमला, प्र. सं. 1969

10. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य- डॉ. सरला शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ संवत् 2013

11. जायसी ग्रंथावली- सं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, चतुर्थ सं. संवत् 2006

12. तसव्वुफ अथवा सूफ़ीमत- चन्द्रवली पाण्डेय, सरस्वती मंदिर, जतनबर, वाराणसी, तृतीय सं. 1966

13. दोहावली- तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर

14. पद्मावत (जायसी)- सं. डॉ. माताप्रसाद गुप्त, भारतीय भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र. सं. 1973

15. पद्मावत मूल और संजीवनी व्याख्या- वासुदेव शरण अग्रवाल, साहित्य सदन, झाँसी, प्र. आवृत्ति-2012 वि.

16. पद्मावत में काव्य, संस्कृति और दर्शन- डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र. सं. 1974

17. बिहारी-रत्नाकर- जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', ग्रंथकार शिवाला, बनारस, 1960

18. भक्तिकालीन कवियों के काव्य-सिद्धांत- डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त, आर्य बुक डिपो, करोलबाग, नई दिल्ली, प्र. सं. 1971

19. भक्ति काव्य में माधुर्य भाव का स्वरूप- डॉ. जयनाथ 'नलिन', रघुवीर शरण बंसल, बंसल एण्ड कम्पनी, दिल्ली, प्र. सं. 1966

20. भ्रमरगीत (सूरदास)- सं. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी प्र. सं. संवत् 2030

21. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य- डॉ. हरिकांत श्रीवास्तव, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, द्वितीय सं. 1961

22. मधुमालती: पुनर्मूल्यांकन- राज युद्धिराजा, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, 1976

23. मध्यकालीन श्रांगारिक प्रवृत्तियाँ- पं. परशुराम चतुर्वेदी, साहित्य भवन प्रा.लि. इलाहाबाद, प्र. सं. 1961

24. मध्यकालीन प्रेम-साधना- पं. परशुराम चतुर्वेदी साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद, प्र. सं. 1962

25. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान- डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहावाद, द्वि सं. 1982

26. मधुर रसः स्वरूप और विकास (भाग-1)- डॉ. रामस्वार्थ चौधरी 'अभिनव' राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. दिल्ली, प्र. सं. 1972

27. मधुर रसः स्वरूप और विकास (भाग-2) डॉ. रामस्वार्थ चौधरी 'अभिनव' राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. दिल्ली, प्र. सं. 1972

28. मंझन कृत मधुमालती- सं. डॉ. शिवगोपाल मिश्र, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी प्र. सं. 1959

29. मंझन का सौंदर्य-दर्शन- डॉ. लालता प्रसाद सक्सेना, निर्मल प्रकाशन संस्थान, जयपुर, 1974

30. रामचरितमानस (तुलसीदास)- सं. डॉ. माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्र. सं. 1949

31. राजस्थानी के प्रेमाख्यान परम्परा और प्रगति- डॉ. रामगोपाल गोयल, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1966

32. रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यंजना- डॉ. बच्चन सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्र. सं. 2015 वि.

33. संत कबीर- शांति सेठी राधास्वामी सत्संग व्यास, पंजाब, पंचम संस्करण 1990

34. सूफ़ी-काव्य- विमर्श डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1968

35. सूफ़ी काव्य- संग्रह पं. परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वि. सं. संवत् 2013

36. सूफ़ीमत और हिन्दी- साहित्य डॉ. विमल कुमार जैन, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1955

37. सूफ़ीमत और हिंदी सूफी- काव्य डॉ. नरेश, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2007

38. सूफ़ीमत: साधना और साहित्य- राम पूजन तिवारी, ज्ञानमंडल लि., बनारस, प्र. सं. संवत. 2013

39. सूफी संत साहित्य का उद्भव और विकास- जयबहादुर लाल, नवयुग ग्रंथागार, सी-747, महानगर, लखनऊ, प्र. सं. 1969

40. हकायके- हिन्दी मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी, अनु. सैयद अतहर अब्बास रिज़वी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी प्र. सं. संवत् 2014

41. हिन्दी काव्य-धारा में प्रेम- प्रवाह पं. परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद, प्र. सं. 1952

42. हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान- पं. परशुराम चतुर्वेदी हिन्दी ग्रंथरत्नाकर प्रा. लि. हीरा बाग, गिरगाँव, बम्बई, प्र. सं. 1962

43. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य- डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ, चौ. मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड अजमेर, प्र. सं. 1953

44. हिन्दी-साहित्य- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अत्तरचंद कपूर एंड संस, देहली, 1964

45. हिन्दी-साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2022

46. हिन्दी-साहित्य का इतिहास- सं. डॉ. नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली, 1990

47. हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रामकुमार वर्मा, रामनारायण बेनीमाधव, प्रयाग पंचम संस्करण

48. हिन्दी-साहित्य का बृहद इतिहास- पं. परशुराम चतुर्वेदी, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2025

49. हिन्दी सूफ़ी काव्य की भूमिका- रामपूजन तिवारी ग्रंथ वितान, पटना, प्र. सं. 1960

अंग्रेजी ग्रंथ

1. अलग़जाली दि मिस्टिक- मार्गरेट स्मिथ, लंदन, 1911

2. आउट लाइ ऑफ इस्लामिक कलचर- ए.एम. ए. शुस्त्री, बंगलौर, 1938

3. दि अवारिफुल मारिफ- अनु. एच. बिलबर फोर्स क्लार्क, कलकत्ता, 1891

4. दि इन्फ्ल्यून्स ऑफ इस्लाम- ई. जे. बोल्स, वी. डी. लिन्कन विलियम्स, 1932

5. कश्फ़ उल् महजूब (हुज्वेरी)- अनु. आर.ए. निकलसन. लंदन,1911

6. दि मिस्टिक्स ऑफ इस्लाम- आर. ए. निकलसन, लंदन, 1914

7. राविया दि मिस्टिक- मार्गरेट स्मिथ, कैमब्रिज यू. प्रेस, 1928

8. रूमी दि पोयट एंड मिस्टिक- आर.ए. निकलसन, लंदन, 1950

संस्कृत ग्रंथ

1. अभिज्ञान शाकुंतलम् (कालिदास)- सं. डॉ. कृष्णकांत त्रिपाठी भारतीय प्रकाश चौक, कानपुर प्र. सं. 1974

2. उत्तर रामचरित (भवभूति)- सं. डॉ. श्रीनिवास मिश्र महालक्ष्मी प्रकाशन, शहीद भगत सिंह मार्ग, आगरा

3. कठोपनिषद्- गीता प्रेस, गोरखपुर

4. कर्पूर मंजरी (राजशेखर)- व्या. डॉ. सुदर्शन लाल जैन भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्र. सं. 1983

5. नारद भक्ति दर्शन- नारद रचित भक्ति सूत्र ब्रह्मचारी प्रेमानंद 'दादा' सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, बम्बई, प्र. सं. 2033

6. भक्ति रसामृत सिन्धु (रूप गोस्वामी)- सं. डॉ. नगेन्द्र हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, प्र. सं. 1963

7. मृच्छकटिकम (शूद्रक)- व्या. डॉ. जगदीश चंद्र मिश्र चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र. सं. 1985

8. साहित्य-दर्पण (विश्वनाथ)- व्या. कृष्ण मोहन शास्त्री चौखंभा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण 1985

9. श्री परात्रिशिका (अभिनवगुप्त)- व्या. आचार्य नीलकंठ गुरटू मोती लाल बनारसीदास, जवाहर नगर, दिल्ली, प्र. सं. 1985

10. श्रीमद्भगवद् गीता- गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2011

कोश

1. अमरकोश- चौखंभा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, संवत् 2039

2. मानक हिन्दी कोश (भाग-3)- रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण

3. वाचस्पत्यम् कोश- चौखंभा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, सं. 1962

4. संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी- आप्टे, 1922

5. हिन्दी शब्द सागर (छठा भाग)- सं. डॉ. श्यामसुंदर दास नागरी प्रचारिणी सभा, काशी संवत् 2026